



$$\frac{1}{2} \frac{d}{dt} \left(\frac{1}{2} \frac{d^2 x}{dt^2} \right)$$

किशोरियों
का
मानसिक विकास

10532
28/12/89

4c532
28/12/89

किशोरियों का मानसिक विकास



आशारानी धारा

जितने माता-पिता, जितने अभिभावक हैं, जो केशीयं और ठहराई के बीच के वय तन्त्रि-बाल की समस्याओं और अपेक्षाओं को समझते हैं? जहाँ माताएँ समझदार हैं, मुझमें व्यक्तिपर वाली हैं, अपनी किशोरी बेटियों की इन उम्र की 'समझें जाने की चाह' को राह दे पाती हैं, उन्हें आत्मोपता से अपने इतने निकट रख पाती हैं कि वे अपने उनमें मन की भीतरी समस्याओं और आज के जटिल परिवेश की बाहरी कठिनाइयों-पदेशानियों को लेकर उनमें अपना मन खोल सकें, समय पर उनसे सही सलाह और सरक्षण पा सकें, वही प्रायः कोई समस्याएँ नहीं उठती। उठती हैं, तो उनका समाधान भी आसानी से निकाल लिया जाता है। घर की इज्जत, सड़की की अस्मिता स्वतरे में नहीं पड़ती और देश, समाज की आशाएँ हमारी में किशोरियाँ अपना व्यक्तित्व मथारने, अपना भविष्य बनाने में समर्थ हो, सफल-भार्यक नागरिकता की हकदार बन जाती हैं।

सरल भाषा व रोचक शैली में किशोरियों की इन्हीं आकांक्षाओं-अपेक्षाओं, अभिभावकों की इच्छाओं-आशाओं और मावी पीढ़ी की उज्ज्वल सम्भावनाओं को लक्ष्य में रखकर इस पुस्तक की रचना की गयी है।

इस पुस्तक की प्रेरणा के पीछे मेरा विभिन्न पत्रिकाओं के पाठकीय समस्या-स्तम्भों के संचालन व किशोर पीढ़ी की समस्याओं के समाधान का २० वर्ष का स्वापक अनुभव है। यह सामग्री इसके पूर्व कई किशोरों में दैनिक 'पजाब केसरी' के सोमवातरीय महिला सस्करण में धारावाहिक छप चुकी है और वह लेखमाला पाठकों द्वारा बहुत सराही गई थी, जिसके लिए मैं सम्पादक 'पजाब केसरी' की बहुत आभारी हूँ। इससे किशोरियाँ और उनकी माताएँ समान रूप से लाभान्वित हो सकेंगी, इसी आशा के साथ पुस्तक आपके हाथों में—

सी ६ बी/एम आई. जी. पर्सटल,
मायापुरी, नयी दिल्ली-११० ०६४

—भागारानी शीला

उफ ! यह रोक-टोक, यह घुटन !

लता की बात

ओह ! बरसान की ये हल्की-हल्की फुहारें । लीना कहती है, उसे इन फुहारों में भीगना बहुत अच्छा लगता है । मैंने भी आज भीगकर देखा । पर कपड़े भीगे, तन भीगा, मन तो नहीं भीगा ! कवियों ने इस मौसम के न जाने कितने रमणीय विषय धींचे हैं । कभी-कभी शिबको में बैठकर मुझे भी यह इन्द्रधनुषी रंग देखना अच्छा लगा है । बाहा, पटों बैठकर देखा करूं । पर नहीं, जल्दी ही मन उचट गया ।

लीना कहती है, 'कैसे हो तुम लता ! ये ठंडी हवाएँ, यह हरियाली !' पर मैं क्या कहूँ ? मुझे तो बरसान एकदम नापसंद है । चारों ओर कीचड़, पानी और गदगी ! वातावरण में एक अजीब घुटन और मौलन । घटाओ का मन भी जैसे धिरा-घुटा । बादलों की आँखें बरस-बरस पड़ने की आतुर । मन भरा-भरा-सा, पर कितना शोभित और उदास । पता नहीं, यह गदा मौसम लोगों को कैसे अच्छा लगता है ?

पर लीना को अच्छा लग सकता है । कितना साफ-सुथरा, सजा-सँवरा घर है उसका ! हर चीज अपनी जगह पर ठीक-ठाक । उसके घर की तरतیب को मैं तो देखती ही रह जाती हूँ । छोटे भाई-बहन भी कितने शिष्ट और सलीकदार ! और मम्मी ! ओह, लीना की मम्मी तो मुझे कितनी अच्छी लगती हैं, यह मैं बयान ही नहीं कर सकती । हमसे बात करती हैं तो लगता है, जैसे मम्मी नहीं, सहेली हो । तभी तो लीना के मजे हैं । जो चाहे कर सकती है । जैसे चाहे रह सकती है । न रोक, न टोक ।

एक हमारा घर है । गन्दगी और फूहड़पन का मनमाना राज । किसी सहेली को घर साने की मन नहीं करता । न डग की बैठने की जगह, न

दण्ड का पक्षीचर। कभी दोगहेनिवा का ही चारों तो हुंमने-बोमने की भाषात्र में दिवाली की चबे तब जाती है। मां चार भेजेंगी तो बेंदेन गेड-प्याने और टकी-गुभांनी पाप। मन कुडकर रह जाता है। कोई पुछे, इनका बड़ा घर है तो एक कमरा भी इंग में गजाया नहीं जा सकता? बहो, तो मां बहेंगी, 'हमें अमीरों की मकान नहीं बननी है।' अब मैं बहूँ हूँ, क्या सीना के बेंडी दिवाली में ज्यादा बमाने हूँ? तो उनका उत्तर होता, 'भूटी सेवी में क्या रखा है, हमने दिनावा नहीं होता।' अब मैं कुडकर रह जाती हूँ। मसा इतने अमीरी का दिनावे की क्या बात है? यह तो गुपड़ ब्यवस्था और नये तौर-तरीकों की बात है। अपनी समझ की या मूभजूझ की ही बात है। हमारी भाव भी इनकी बम तो नहीं कि हम बंग का कुछ भी नहीं कर सकने? पर कोई जकरन महसूस करे तब तो!

बसो, यह भी मान लें कि मां मनपड़ हैं। पुराने विचारों की हैं। इन-लिए उन्हें रहन-सहन का तखीका नहीं आता। अक्सर मैं ऐसा बहकर सहेलियों को समझा देती हूँ। पर हंसने-बोसने पर रोक क्यों? क्या पुराने सोच हंसो-मझाक भी नहीं करते थे? एक-दूसरे को समझने की कोशिश भी नहीं करते थे? दूसरों के घर देखती हूँ तो पता नहीं क्यों मन अच्छा-अच्छा लगता है। कितने अपनेपन और प्यार से वे बोलते हैं! छोटे भाई-बहन कितनी सम्मता से पेश आते हैं। दिल खोलकर बातचीत। हंसो-मजाक। उन्मुक्त वातावरण। न तनाव, न भुंझनाहट। न बटुता, न सदेह। देखकर तबीयत खुश हो जाती है। अपनी उन सहेलियों के परिवारों से मन-ही-मन ईर्ष्या करने लगती हूँ। कितनी-कितनी बातें लेकर घर लौटती हूँ, 'यह कहेंगी, यह कहेंगी,' पर घर आते ही सारा उत्साह ठग पड़ जाता है। मन पहले उबलता है, फिर घुटते हुए उसमें धुआँ भरकर रह जाता है।

घाते ही प्ररनों की बीछार! 'कहाँ इतनी बेंद लगनी?' 'क्यों लगनी?'—तिर से घेर तक मेरा ऐसे निरीक्षण, जैसे मैं कोई सपराधी हूँ। अपने ऊपर जमी घूरती नजरें बेंसकर ही घेंरी तो सिद्धी-विद्धी गुमहोने लगती है। बटोरा हुआ सारा साहस जबाब दे जाता है। जिन बातों को सारे रास्ते मन में दुहराती आती हूँ, वे सारी-नी-सारी भूम

जाती हैं। या तो मैं जवाब ही नहीं दे पाती और नज़रें झुकाकर अपनी दृष्टि में स्वयं ही अपराधिनी हो उठती हूँ या फिर कुछ-ना-कुछ बटवट बोल जाती हूँ। फिर सुनने को मिलता है, 'दिनोदिन उद्दण्ड और भूँहफट होती या रही है। इसकी पढ़ाई, बाहर निकलना सब बन्द कर दो।' और मैं सिर से पैर तक नापकर वहाँ से हट जाती हूँ। बाहर की रोशनी भीतर गुम होने लगती है। फिर वैसा ही अंधेरा मन में उतरने लगता है। अंधेरा, जैसे बादलों का घटाटोप। एक बरसात बाहर—कभी उमम, कभी गड-गडाहट, कभी टप-टप और चारों ओर कीचड़, गन्दगी। एक बरसात भीतर—घुटन और सीतन और—।

मन को जैसे-तैसे धामनी हूँ तो माहौल में तूफान के बाद की शान्ति पाती हूँ। एक सहम। एक चुप्पी, जिसे तोड़ने के लिए फिर शुरू होती है, उपदेशों की टकार 'तुम्हारी यह सहेली अच्छी नहीं। बहुत फेशन करती है। आजाद घूमती है। उसके साथ तुम्हारा बैठना-उठना ठीक नहीं।' न जाने उसकी माँ भी कौसी है जो लड़की को इतनी छूट देकर बेफिक्र बँठी है। यहाँ तो तुम्हें जरा-सी देर ही आए तो हमारे प्राण सूखने लगते हैं।

.. और न जाने क्या-क्या।

खूब ! इन्हें मेरी बहुत चिन्ता है और लीना की मम्मी को लीना की बिल्कुल चिन्ता नहीं। बहुत खूब ! क्या कहने ! वही लीना, जिसके भाग्य से मुझे ईर्ष्या है, जिसकी मम्मी को देखकर मुझे तपता है, मैं उनकी कोख से क्यों न पैदा हुई ! उन लोगों का सलीका, जिसे ये बिगाड़ने वाला फैशन कहते हैं, ये क्या जानें ! ओह ! ये कभी समझेंगे कि लीना क्या है, उसकी मम्मी क्या है और उनका घर-परिवार कैसा है ? नहीं। ये कभी नहीं समझेंगे। मुझे यो ही घुट-घुटकर मरना होगा। जो चाहता है, ऐसे घुटकर मरने से तो अच्छा है, आत्महत्या कर लूँ।

यह सब लीना से कभी कहने की कोशिश करती हूँ तो वह बात को हँसी में उड़ा देती है। कभी भी गम्भीरता से नहीं लेती। यह मेरी सहेली है, फिर समझती क्यों नहीं ? .. ठीक तो है। वह क्यों समझेंगी भला ! उसे क्या गम है ? उसने क्या यह सब देखा-भूगता है जो समझे ?

लीना और मुझमें कोई सामाजिक या आर्थिक स्तर का अन्तर नहीं।

सपने मन में मँजोनी हूँ। कंसी-कंसी कल्पनाओं से घिरी रहती हूँ। कितना अच्छा लगता है बाहर। कालेज में? नहीं, सबके बीच नहीं, सिर्फ अपनी सहेलियों के घर। या फिर लीना के साथ घूमते हुए। उसके बाद तो किस तरह निराशा के भँवर में डूबकर, टूटकर घर की देहरी पर पाँव रखती हूँ, यह मेरे सिवाय कौन जानना है?

देहरी! उस दिन लीना बह रही थी, 'घबराओं नहीं सता, किशोर-वस्था को साँपकर तरगाई की देहरी पर नदम रखने हुए यह सब होता ही है। लेकिन अकेले मेरे साथ ही क्यों? क्या लीना इसी उम्र से नहीं गुजर रही? क्या वह मुझसे ज्यादा समझदार है? शायद है। पर क्यों? क्या इसीलिए नहीं कि उसके घरवाले उसका साथ दे रहे हैं जबकि यहाँ?

यहाँ तो जैसे चारों जोर शत्रुओं के बाढ़े में घिरी मैं अकेली जूझ रही हूँ। न जाने कब तक जूझना होगा? न जाने कब राह मिलेगी? राह या मुक्ति? यह भी तो नहीं जानती कि राह खोज रही हूँ या मुक्ति?

घर में भय। कालेज में भय। मन में भय। सब गलत-गलत नहीं होगा तो क्या होगा? जानती हूँ, मुझसे गलतियाँ होती हैं। कहना कुछ चाहती हूँ, कह कुछ जाती हूँ। पछनानी हूँ, पर जगलो वार फिर वैसे ही हो जाता है मुझसे। अपने पर वश क्यों नहीं रहा? मन में याद किया हुआ समय पर सब भूल क्यों जाती हूँ? गब खाते। सक्न्प। पढाई। लगता है, माँ की यह रोकटोक, पिताजी की डाँट और मेरे ये भय मुझे कहीं का नहीं छोड़ेंगे। पर इस तरह तिर पटकने में भी क्या होगा? कुछ करना चाहिए। क्या करूँ? कुछ मुझना भी तो नहीं!

हाँ, एक बात ध्यान में आ रही है। पता नहीं, पहले मेरा ध्यान इस बात पर क्यों नहीं गया? लीना मेरी सहेली है, निकट सहेली। पर मैं अभी उसे अंतरंग मदेभी क्यों नहीं बना पाई? यह क्या सहेली काजा बराबरी का रिश्ता है कि मैं उससे प्रभावित हो उसकी तरफ खिचती रहूँ? उसकी प्रशंसा करती रहूँ? उससे ईर्ष्या करती रहूँ? और उसे लेकर मन-ही-मन हीन भाव से घिरी रहूँ? कहीं इसीलिए तो मैं बराबरी की चाह लिए भी उसकी बराबरी कर पाने में असमर्थ नहीं रह जाती? कहीं इसीलिए तो मेरी सारी हँसी-खुशी गायब नहीं हो जाती कि मैं लीना

जैसी नहीं बन सकती ? कुछ भी हो, एक बार अपना वह सारा हीरा-भटकर सीना से खुलकर बात कहेंगी । शायद सीना जानती है कि मैं उससे ईर्ष्या करती हूँ । फिर बात को धोतकर उसके सामने रख देने में क्या हर्ज है ? वह एक गुलामी हुई लड़की है । हो सकता है, अन्तरंगता पाकर वह मेरी उलझन गुलामाने में भी कुछ मदद कर दे ! मैं बस ही उससे पूछूंगी ।

यह उम्र और ये राम !

लोना की बात

चलो, लता खुली तो ! इस बेवकूफ लडकी को मैंने त जाने कितनी बार कुरेदा होगा कि कुछ खुलकर बोलने, कुछ दिल खोले । पर नहीं । जब देखो, बेहूरा लटका हुआ । आँसो के पपोटे सूजे हुए, जैसी अर्मा रोकर आ रही हो या रात-भर जागकर पड़ती रही हो । रात-भर क्या, आधी रात तक या दो-तीन घंटे भी रोत्र जमकर पड़ती तो क्या रूँ हर परीक्षा में पिछड़ती जाती ? और रोने का क्या काम ? - हाँ, इस उम्र में रोने का क्या काम ? यही तो हँसने-खेलने की उम्र है । जी-भर सीखने की । मन

कोई प्रधानमन्त्री बना देता तो एन-एन को टिकाने सगा देती। उन नरक भी, जिन्होंने चारों ओर घण्टावार फँसा रखा है। और उन दुबड़ों को भी जिन्होंने अच्छे-भले लड़कों पर से भी हम लड़कियों का विरवास उठा दिया है।

अरे, मैं कहाँ बहकने लगी? बात तो समय की कर रही थी न, मन में कितनी-कितनी योजनाएँ होती हैं और समय के अभाव में अधिकांश धरी रह जाती हैं। और एक यह मूर्ख लता है जो बैठी-ठाती सोचनी रह जाती है। उसकी आँखें धून्य में न जाने क्या खोजती रहती हैं। भलीभांति कभी तो खुलकर हँसती नजर नहीं आती। यों हर समय साय चिपकी रहेगी, पर जैसे ही हम चार-छह जने मिले और हँस-दिल्लगी शुरू हुई कि वह गधे के सींग-सी गायब। कई बार तो इतना बुरा आया उसपर कि मैं क्यों इस 'धीर' को अपनी मित्र बनाए बैठी हूँ। भटक क्यों नहीं देती? पर वह कभी मुझसे लड़ी ही नहीं तो अलग करती? मुझे उस पर तरस आ जाता है और वह मुझे ऐसे देखती जाती है जैसे मैं न जाने किस स्वर्गलोक में उतरी हूँ। उसका यह तर्क बलात्, 'खुशकिस्मत हो गई' और फिर वही उदास, लटकने के हवा, सारी दुनिया का गम इसी के सिर आ पडा हो। उसकी और मेरी परिस्थितियाँ भिन्न हो सकती हैं। पर इस उम्र में इतनी चिन्ता, इतना उदासी, इतने गम का क्या काम? यह बात मैं कभी भी नहीं समझ पा

न आज ही समझ पाई। उसकी सारी कच्ची दास्तान मुझे आवजूद। ठीक है, लता की माँ पुराने विचारों की है। घर का रहन-साँसाफ-मुपराब सभी केदार नहीं। पर इसमें उसकी माँ की क्या गलती है वह पिछले जमाने की है। उसे किसी ने पढ़ाया या टीक से सिखाया नहीं तो यह उसका कुमूर कैसे मान लिया जाए? लता तो नये जमाने की है। सबकुछ नये तरीके से चाहती है, तो इनके लिए माँ से ही सारी अपेक्षाएँ क्या? वह खुद कुछ मेहनत क्यों नहीं करती? क्या कालेज से आने

— नये-नये तरीके के बात-काम समय लगाकर बरत स्वयं पर को टीक-ठा

करते बेहाल न हो जाएँ ? छोटे भाई-बहन घर ठीक रखने में सहयोग करें या सलीके से रहे, इसके लिए भी सता को उन्हें कुछ समय देना चाहिए । जब मैं घर का काम करती हूँ तो कैसे बबलू-गुड्डी को साथ लगा लेती हूँ । उन्हें इसमें ध्यान दे आता है—समझते हैं, 'हम भी कुछ हैं' । मेरा काम हल्का हो जाता है और वे सीख जाते हैं ।

ठीक है, मेरी मम्मी पढ़ी-लिखी हैं और सता की माँ से ज्यादा समझदार हैं, फिर भी क्या हमें घर से रोक-टोक नहीं मिलती ? काम बिगाड़ने या चलती करने पर झिड़कियाँ नहीं खाती पड़ती ? दर से लौटने पर देरी का कारण नहीं बताना पड़ता ? हाँ, यह बात जरूर है कि मम्मी हम किमी के सामने नहीं टोकतीं । मेरी सहेलियों के सामने मेरी बात रख लेती हैं फिर बाद में समझा देती हैं कि मैंने कहीं गलती की, क्या ठीक किया । यह सब वे हमें सिखाने के लिए ही तो करती हैं, वरना हमें इस उम्र में हर बात की समझ पड़े ही है !

बहुत-सी बातें समझ में नहीं आती । कई बातों में तो मन उलझकर रह जाता है । सोचती रहती हूँ, मम्मी से पूछूँ कि नहीं ? फिर पूछकर ही चैन मिलता है । वह 'गाइड' कर देती हैं तो सगला है, अरे यह तो कोई बात ही नहीं थी । बेकार में ही मैं उलझती रही । इमीलिए अब मैं बाहर की हर बात मम्मी को आकर बता देती हूँ । मेरा मन हल्का हो जाता है । मुझे राह मिलती है और मम्मी भी बाहरी दुनिया के बारे में बहुत-कुछ जान जाती हैं । उनके जमाने की बात और भी, आज की और है । अपनी इन उम्र में जब वे बाहर ही काम निकल पाती थीं, तो उनके सामने जाने वाली समस्याएँ और थीं, आज और हैं । इसीलिए उनके उस उम्र के सोचने में और हमारे आज के सोचने में भी अंतर है । अगर हम उनके बाहर की बातें न करें या उन्हें कुछ न बताएँ तो उन्हें यह फर्क मालूम कैसे होगा ? जैसे मेरी मम्मी ने कुछ समय नौकरी भी की थी, पर कुछ समय ही तो ! बाद में पापा के कहने पर वह भी छोड़ दी । हाँ, मेरी मम्मी काफी कुछ पढ़ती जरूर रहती हैं । पर पढ़ने की बात और है, स्पवहार में जानने की और ।

सता से जब मैंने यह सब कहा तो उसने मुझे घूँ देखा, जैसे मैं कुछ

नी नहीं आ रहा था। वह बात उसे एकदम नई लगी कि माँ ही अपने अनुभव से हमें नहीं सिखाती, हम भी बाहर की नई जानकारियाँ देकर उन्हें सिखा सकते हैं। ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें अपने साथ चलाएँगे कैसे? वे हमारे सोचने के ढंग या हमारी नई ज़रूरतों को जान ही नहीं पाएँगी, तो हमारे साथ सहयोग कैसे करेंगी? भूख लता को यह भी समझाना पड़ा कि अभी मे तुम माँ को साथ लेकर नहीं चलोगी, उन्हें नए युग की, बदले समाज की नई बातें बताकर तैयार नहीं करोगी तो आगे चलकर वे तुम्हारी पसन्द के विवाह में भी रोडा अटकाएँगी। तब सिवाय मिर पटवने के तुम कुछ भी नहीं कर पाओगी।

मुझे लगा, जैसे बात लता के मर्म को छू गई थी। उसकी आँखों में चमक बढ़ती जा रही थी। चेहरे पर एक रंग आ रहा था, एक जा रहा था। परिवर्तन का संकेत पाकर मैंने उसे यह भी बत दिया कि अब यह हीनभाव और झिझक छोड़ो। स्वयं में आत्मविश्वास लाओ और सड़कों से भी घुलकर मिलो-जुलो। वे कोई हीरा नहीं हैं, जो तुम्हें खा जाएँगे। यह भी कोई बात हुई कि जहाँ चार जनो में चर्चा-चली, कोई हँसने-खेलने की बात खमी कि वह खिलक ली। क्या हम हर समय पड़ते और काम ही करते रहें? स्वयं को तरौताया रहाने के लिए हँसो-खेलो नहीं? मनोरजन-गोष्ठियों से नई ताज़गी ही नहीं मिलती, नई-नई जान-कारियाँ भी मिलती हैं। इस तरह अनग-बलग रहकर या कुठित होकर हम क्या सीख पाएँगी भला? फिर जिन्दगी केवल कठिनाइयों से भरी हुई भी नहीं है। उसके आगे भी है। जीवन-पथ के लक्ष्य समझना पड़ेगा।

क्या ? अपना ही नुकसान किया न ? कुटा, हीनता, अकेलापन, व्यर्थ का शोष ! पढ़ाई से पिछड़ गईं । सामाजिक जीवन से पिछड़ गईं । अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लिया । अपना स्वभाव खराब कर लिया । क्या इनमें सहायता वातावरण टोक ही गया ? उल्टे तुमने माँ को इतना चिढ़ा दिया कि दुखी होकर बेटे तुम्हारी पढ़ाई सुझाने की बात सोचने लगी है । जितनी तुम्हारे जैसी लड़कियाँ करें और दोष पढ़ाई पर आ जाए ? पता इससे हम सभी लड़कियों का रास्ता रकता है ? ...'

पर मुझे यहीं रक जाना पड़ा । देखा, सता रो रही थी । मुझे बुरा लगा । पता नहीं, अपनी भोक में मैं उसे क्या-क्या बह गई थी । क्या मैं उसे ताड़ना दे रही थी ? क्या अधिकार था इसका मुझे ? मैं अभी जानती क्या हूँ ? जाने सता भीतर से कितनी दुखी थी ? चुपचाप क्या-क्या हली आ रही थी ? इसके पूर्व कभी उसने कुछ खुलकर बताया भी तो ही था । मैं भी उसके लड़के चेहरे का अक्सर मजाक ही उड़ाती रही । उसपर तरस खाती रही । कभी उसे भीतर तक समझने का प्रयत्न ही किया । क्या मुझे उसे समझना नहीं चाहिए था ? अभी भी पूरी तरह ही समझी हूँ ?

मेरा मन भर आया । मैंने उमंगकर सता को अपने साथ भीच लिया और उससे माफ़ी माँग ली । पर वह नाराज कहाँ थी ? मुझसे तो वह ज़ले भी कभी नाराज नहीं हुई थी । कुछ भी कह दूँ, बस देखती-भर रह जाती थी, जैसे मुझे पक रही हो । उताने बताया, वह मुझसे बिल्कुल नाराज ही है, बल्कि नई रोज़नी देने के लिए कृतज्ञ है । वे आँसू तो ग्लानि के घेरे कृतज्ञता के थे और हमारे आपसी प्यार के थे । प्यार, जो इस अनजानगी ताड़ना से कम नहीं हुआ, और प्रगाढ़ ही हुआ । सच, मुझे भी तो समझा है कि मेरे साथ चिपकी रहने वाली यह छुईमुई-जी सड़की आज ही करीब आ सकी है ।

अब देखना है, आगे वह क्या करनी है ?

जवान होती लड़की की चिन्ता

लता की माँ

आजकल की इन लड़कियाँ का भी कुछ पता नहीं चलता। हर बान में दूमरों की नकल। हर बान में दिग्बावा। भला क्या रखा है, इस दिखावे में? पर चलो छोरी कुछ ठीक तो हुई। नहीं तो हर वक्क भूनभुनाती ही रहनी थी, 'यह घर है या कबाडखाना? यह पाय कैसे बनाई है? यह क्या पकामा है? यह क्या बिछाया है? यह बीज यहाँ क्यों रखी है? भेगी सहेलियों के सामने तुम ऐसे क्यों बोलती?' बस हर समय यह ऐसा क्यों, यह वैसा क्यों? लड़की न हुई, माँ की अफसर हो गई और सहेलियाँ न हुईं, सुदा हो गईं।

जब देखो, तब लीना की तारीफ। उसके घर की या उमकी माँ की तारीफ। यह नहीं कि उसके जैसा कुछ करके भी दिखाए। पढ़ाई में पीछे घर के कामकाज को हाथ नहीं लगाना। बस लीना जैसा फैशन चाहिए और उसके जैसा ही भूमना। उस छोकरी ने ही इसका दिमाग बिगाड रखा था। खुद तो घर में टिकनी न थी, इसे भी उकसाती रहनी थी। यह तो हमे अपने बाबूजी का डर है, जो उसके साथ बाहर कम निकलती है, नहीं तो मुझे तो कुछ समझती ही न और उसके जैसी हों आचार्य हो जाती। पता नहीं, कौसी माँ है उसकी, जो जवान होती छोरी को घर में बिठाकर नहीं रखती। इतनी आजादी क्या घबड़ी है? मेरा बस चले तो कालेज में पढ़ने भी न भेजूं। पर रो-छोकर अपने बाबूजी को मना लेती है और वे भी मान जाते हैं। मैं कर ही क्या सकती हूँ? शाबद उनका कहना भी ठीक है। आजकल कम पढ़ाई से अच्छा घर-घर भी तो नहीं मिलता।

पर गनीमत है कि इसकी अकल कुछ ठिकाने आ रही है। थोडा-थना

घर का काम करने लगी है। भाई-बहनों को भी निहत्ता-मुत्ता के तंबार कर देनी है। घर भी भाड़-फूक के तंबार देनी है। उम्र दिन बाबूजी से अपने कपड़ों के लिए पैसे मांग लिए और जाकर गुड़ियों के लिए धाक और घर के लिए नए प्लेट-प्याले ले आई। मैं तो ताकती ही रह गई, लता को यह अकल बहू में जा गई? कम मचल के मेरे से दस रुपए ले गई। मैं सोचूं, चिन्ता, पानी के लिए चाहिए होंगे। भाई तो हाथ में एक नया मैत्रपोश था। नाकर मेज पर बिछा दिया। फिर मुन्नी, राजू को समझाने लगी, 'देखो इस पर ख्याही या धाव नहीं फैलाना—हाँ।' और वे भी कैसे मुझे हिला रहे थे। मुझे तो देखकर हँसी आ गई। लता के माय-साय जैसे उनका भी गुधरना नूट हो गया।

भला ऐसे घुद आगे होकर काम करो तो कर लो अपनी मरजी। अपना क्या जाता है? पहले ही राजू, मुन्नी को ऐसे प्यार से सिखाती तो क्या वे न मानते? जब देखा, तब उन्हें डाँटती-फटकारती रहती थी। हर बात पर झुमलाती और नाक-भोंद सिकोड़ती रहती थी। जरा-जरा-सी बात पर हठकर खाना-पीना छोड़ देती थी। अपना भी खून जलाने लगी, मेरा भी। मैं तो कहूँ, कौन लेगा इस मुँह-पट्टी लकड़ी को? और बहूँ करेगी यह गुजारा? बस इसी चिन्ता में घुसी जा रही थी मैं तो। बाबूजी को बालू तो बी भी टाल दें—'अभी मासमक, अल्हड उमर है दसकी, अपने धाप समक जाएगी।' या मेरे को ही डाँट दें—'तुम भी उसके साथ ठीक पेश नहीं आती हो। वह क्या कहते हैं, 'कन्ट्रोल' तो कर नहीं सकती, बस शिकायतें ही शिकायतें। तुम्हें सिखाना आता भी है?'... और मैं कुद के रह जाती थी। न बाप मुने, न बेटा, तो मैं भला क्या करूँ?

अब तो रसोई में जाकर खाना बनाना भी सीखने लगी है। न पकाना आए, न नमक-मिर्च का अंदाज। बस सफाई और सजावट पर ही ध्यान। यह बीज वहाँ नहीं, यहाँ। यह ऐसे नहीं, ऐसे। कभी-कभी तो नाक में दम कर देती है। पर चलो, रसोई में इसका ध्यान तो गया। नमक-मिर्च का अंदाज और पकाना भी धीरे-धीरे सीख जाएगी... यह सब तो ठीक है। पर वह तो घर के सचों में भी दसल देने लगी है। यह सचा फालतू है।

। इसे बद करो। यह बीज लाओ, यह मत लाओ। भला तुम

अभी क्या समझती हो ? अपनी पढ़ाई में मतलब रखो । मैं कहूँ, इस छोटी का इनका आगे बढ़ना ठीक नहीं । जैसे मैं तो कुछ हूँ ही नहीं । पर दाबूजी को कहती हूँ तो मेरी ही शायत—'ठीक तो कहती है ? कुछ उस भी करने-बताने दो ; सीखेगी ही तो । कुछ उसकी मानो, कुछ अपनी मनवाओ । जवान होती लड़की के साथ ऐसे ही चल मचना है ।'

मान लिया भई । यह सुना रहे मही । घर में इसका मन तो लगे किमी तरह । भाई-बहनो से ठीक बोले । पढ़ाई ठीक करे । मेरी माने, चाहे न माने । पर नहीं, अब किसी वक्त कहना नहीं भी मानती तो कम में कम बोलनी इज्जत से है । बस कैसे अपनी बांह मेरे पंज में डालकर हमने अपनी जिद्द मनवा ली ? नहीं मरजी थी तो भी मैंने हम शीलू के साथ जाने दिया । कभी-कभी तो हमकी सजाई चीज को छूने भी डरने लगी हूँ । हँसी जा जाती है अपने धाम पर । आखिर माँ ही तो हूँ । बच्चा प्यार से, इज्जत में पेश आए तो माँ को उसके हठ के आगे झुकना ही पड़ता है ।

हेराती तो तब होती है, जब वह बालेज से जाकर बालेज की और सहेनियों की यात्रा मुझे सुनाने लगती है । भ्रमा, मैं क्या जानूँ यह सब ? पर लयता है, न समझने हुए भी मैं उन बातों में रम लेने लगी हूँ । मन में आता है, हम क्यों न पढ़े बालेज में । एक हमारा जमाना था, लड़की को इन्कूल भी नहीं भेजना, बिगड़ जाएगी । आज लड़कियाँ बालेज में लड़की के संक-संग बैठकर पढ़ रही हैं । जमाने की हवा के हिमाच से यह सब ठीक ही है । पर कितनास के बाद लड़के-लड़कियों का आपस में मिल कर यह हँसी-ठूठा करना क्या ठीक है ? इनके बैठने की अलग-अलग अगहें क्यों नहीं बनाई जाती वहाँ ? यह तो ठीक है कि अपनी सहेनियों की तरह लता उनमें घुसनी-मिलनी नहीं ।...पर क्या पता ? उम मुई लीना का सग तो नहीं छोड़नी न ?

हाँ, इस पिछले इम्तिहान में मेरी लता फिर कितनास में आगे निकल गई । शायद यह उसके इधर खूब रहने का ही नतीजा है । बल्लो, अच्छा है । वो कहने है ना, 'देर आवद, दुस्त आवद' । सपानी हो रही है । बन को उसे दूगरे घर जाना है । सबसे हँसे-बोले । अपना सुभाव और बरताव ठीक रखे । सभी तो निभेगी, नहीं तो माँ को ही सब दोष धरते हैं । जब

दो-दो दिन आससी बनकर शीर्षा पड़ी रहती थी और बात-बात पर रोनी-भीकती, भुनभुनाती रहती थी, सब मुझे तो इसकी चिंता ही लग जाती थी। हे भगवान, न जाने क्या होगा ? कौन निमाणा हमें ? पर भगवान का आल-आल धृक है कि लड़की ठीक हो रही है। पलो, चिंता मिटी।

पर कहाँ ? चिंता कभी मिटती है ? वह भी अवात होती लड़की की माँ की ? मुझे तो इसके धुश रहने के पीछे कुछ और ही दिख रहा है। पडोम का यह नरेश कंगे बहाने-बहाने से धक्कर काटने लगा है आजकल ? बचपन में ये साथ खेले है, ठीक है। पर बड़ी होने पर अभी हाल तक तो लना उससे बात तक नहीं करती थी। कैसे भटक देती थी उसे ! अब ? मुझे तो उस छोकरे के रग-ठग अच्छे नहीं लगते। माँ-बाप से तो पटती ही नहीं। जब देखो तब बन-ठनकर दो-चार दोस्तों के साथ घूमता रहता है। पडाई भी छोड़ बैठा है—'विजनेस करूँगा।' भला ऐसी से नहीं विजनेस मधे ? अभी तो बाप का पैसा दिख रहा है न। जब उनाड देगा सब बाप का भी पता चलेगा।

पर वह जो है, जैसा है, हमें उससे क्या ? हमें तो यह देखना है कि लना उससे मिले-जुले नहीं। पहले भटक देती थी, बैसा ही अब भी उसे भटक दे। इसका इधर उमके साथ इतना हँसना-बोलना ठीक नहीं। उस दिन तो वह न जाने क्या लेने आया था ? हाँ 'वह क्या कहते हैं, मैगजीन। और लना ने उसे बैठक में बैठा ही तो लिया ! मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा तो लना फिर भटक गई, 'अब घर आए से बात भी न करूँ ? तुम उमे चाय न पूछो, पर पडोमी है, बैठने के लिए न कटना क्या अशिष्टता नहीं होगी ?' पता नहीं, यह अशिष्टता क्या होती है ? पर तब कहूँ, मुझे इसका नरेश को यूँ बैठा लेना जरा भी अच्छा नहीं लगा। वह तो मैंने बाबूजी को नहीं बताया, 'नहीं तो...। जग लता को ही डाँट के मना कर दिया, 'आगे से उमसे बात नहीं करना, नहीं तो बाबूजी ने बोल दूँगी।' कुछ भी नहीं, मुझसे नहीं, तो बाबूजी से तो डरती ही है। 'अच्छा बाबा, नहीं बैठाऊँगी आगे,' लना ने कहा और बात खत्म हो गई।

फिर भी बिना तो है ही।

10532
28/12/87

यह सपना है या सच्चाई ?

सता

आज फिर बरसात हुई। सुबह से ही हल्की झड़ी लग गई थी। खिड़की में बैठकर देखना अच्छा लगा। माँ ने आवाज दी। मैंने जल्दी-जल्दी नाकाल खाया, चाय पी और फिर आकर खिड़की में बैठ गई। न जाने क्यों, आज पहली बार बरसात मुझे इतनी अच्छी लग रही है? शायद, गर्म-गर्म पकौड़ियों ने चाय का स्वाद बड़ा दिया था, इसलिए। माँ ने बूँदाबूँदी देखा, आज मूँग की पिठ्ठी की पकौड़ियाँ बनाई थीं। मुझे ये बहुत पसन्द हैं। पर पकौड़ियाँ तो बाद में खाई थीं। बरसात का आनन्द लेने में खिड़की में पहले से ही बँठी थी। गली में कीचड़ भी है, गन्दगी भी। फिर भी आज बरसात मुझे सुख लग रही है। हल्की फुहारों से भीगना भी अच्छा लग रहा है। सीजन है। पर घुटन नहीं है। ठंडी हवा को नधुनों से खींच-खींचकर मैं अपने भीतर ताजगी भरती जा रही हूँ।

कम तो ज्यादा ही। अभी ही देख लो। हर का स्थान आग दि बालेन का गाया गया दिखाया हो गया। निद्रा भी तो उठ आई है और अज्ञान उपर-उपर पहमकदमी करने लगी है। बानेन का भार हो गया है और बोरी भी तो ही गहो मित नहीं। बिनाये बरी नहीं है, बानेन बरी। देन का नहीं भी नजर नहीं आ रहा? कमीयों पर जेग भी नहीं हुई, अब देन नहीं होगी? यह मुझे क्या होगा या रहा है? घर की व्यवस्था टोड कर रही है और गुरु अस्पष्टिपण होनी आ रही है। ऐसे कैसे चलेगा?

स्वप्न में देखती थी, हर मइरी बन-उनकर आनी थी। पर मुझे अपने कपड़ों का कमी विशेष ध्यान नहीं रहा। कालेज जाने पर सर्वाइनों से यह प्रवृत्ति और भी अधिक देखी। कोई मुन्दर है, कोई अमुन्दर, पर मुन्दर बनने की कोशिश किसी से भी कम नहीं है। जैसे मुन्दर डिगने में होर लगी हो। प्रदर्शन की भी। कोई अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करती है, कोई पचलता का। कोई अमीगना गत-दम का, कोई झूठे अह का ही। सभी की चाल में एक मस्ती, एक खुमार-सा देखती। मैंने भी घर में लड-झगड़कर बड-बडकर कपड़े तिलवाए। पर मेरी चाल में वह मस्ती, वह खुमार नहीं आ पाया। सहेलियों की खिलखिलाहट में मैं कभी शामिल न हो सकी। लडकों की तो ध्याया से भी दूर भागतो। धीरे-धीरे निराशा में डूबती गई। भूमनाहट बढनी गई। न घर में मत लगता, न कालेज में। सजने-सँवरने से भी विरक्ति होने लगी। अपने घर की गुलतना में मुझे अपना गजना अर्थ लगता। एक डोग। अपने को धूलने का एक बहाना। दूसरी से ईर्ष्या होती। अपने से घृणा। आत्महत्या करने की जो चाहता।

सौना में झोंछें छोल रों तो बहुत साफ-साफ दिखाई देने लगा। मन का सुनापन भरने लगा। पढाई और घर का काम, जो पहले बोझ लगता था, उसे मैं गृहगृहाहट से भरकर करने लगी तो वही घब हल्का लगने लगा। माँ से सहानुभूति उपजी। भाई-बहनों के प्रति प्यार। घर की सँवार में रुचि ली तो अपनी सँवार में भी फिर से रुचि आग उठी। पर इस बार सहेलियों की नीचा दिसाने के लिए नहीं, स्वयं को कलापूर्ण ढंग से सजाने के लिए ही। इसलिए अब महँगी या अधिक पोशाकें नहीं चाहिए। बस जो हों, उन्हें इस तरह पहना जाए, इस तरह कि ...।

पर स्वयं को नये आकर्षक ढंग से पेश करके भी मैं सीना वाली सारी मित्र-मण्डली में धुल-मिल नहीं पाती हूँ। हीनभाव काफी छँट गया है। पर आत्मविश्वास जितना चाहिए, उतना नहीं जाग रहा। उतना क्या, जहरन का भी शायद नहीं। कालेश के अपने सहपाठी लड़को से मैं अभी भी बात नहीं कर पाती। बस हँ-हूँ या फीकी मुस्कुराहट-भर। यह भी कोई बात रही ?

ऐसे ही एक भयानक सपने से मैं डर गई। आँस खुलते तो हाँक रही थीं पसीने से तरबतर। यह क्या था ? रात्रि के प्रथम पहर में तो मैं एरगीम परी-लोक में थी। पहले बदन कसमसाया। उँगलियाँ चटसों फिर जैसे पख खुल पड़े और मैं हवा में उड़ चली। उड़ती ही गई। ऊँचे खूब ऊँचे। कितना आनन्द था उस ऊँचाई पर। कभी उन्मुक्त हूँगी। किलकारी छूटती, तो कभी एक हल्की सिसकारी—उई माँ ! और ठण हवा के भक्तारे, जिसमें मेरी अलकें उड़ी जा रही थी। और राजकुमार सा सजा-धजा नरेश धीरे से उँगलियाँ बढ़ाकर उन्हें सवारता जा रहा था फिर नरेश घोडा-सा झुका। मुझे धाद आया, उस दिन माँ बाबूजी बह रही थी, 'क्या करते हो, बच्चे देखेंगे तो क्या कहेंगे ?' भनक में कानों में पड़ गई थी और मैंने न चाहते हुए भी सिर उठाकर उधर देखा तिया था। "चार होठों की मुस्कुराहट दो की बनने जा रही थी। अचानक क्या हुआ ? एक जोर का धमाका और मैं उस ऊँचाई से एकटा धडाम से नीचे। न राजकुमार बने नरेश का वही पना था, न उम रगी परी-लोक का। और मैं भय से पर-पर काँप रही थी। कट्टर आर्यसमाज बाबूजी की सादगी, सयम का उपदेश देती कठोर मुद्रा सामने लनी थी।

यह सपना था या भविष्य की सन्चाई ? मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ। लगता है, नरेश की निगाहे मुझे पागल कर देंगी। जितना ही उन्हें भूलने का प्रयास करती हूँ, उतना ही उनमें उलझनी जा रही हूँ। इस भूलने के प्रयत्न में सब कुछ भूलनी जा रही हूँ। यौन-सी चीज कहीं रख देनी है, कुछ घाद नहीं रहता और धेकार में इधर-उधर चक्कर काटने लगती हूँ। कम सज्जी में इतना नमक पड़ गया कि कसँसी हो गई। किसी ने भी नहीं खाई। शायद दो बार नमक डाल दिया था। शर्म के मारे इसीलिए आज रनोई में नहीं गई। कह दिया, 'कुम्ही बनाओ माँ, हमसे नहीं आना।' वह तो माँ ने हँसकर टाल दिया, 'आ जाएगा धीरे-धीरे। बहुत बदन पहा है सीलने को। अभी तुम पचो।' और मुझे मुट्ठी मिला गई। माँ को क्या मामूय कि आजकल मैं क्यों हर बात भूलने लगी हूँ। एक बार अव्यवस्थित होकर फिर से क्यों अव्यवस्थित होनी जा रही हूँ। कहीं फिर पत्राई में न लिख जाऊँ ? सो एक और डर !

बुराई भा क्या है ' इसीलिए मा उस नापसन्द करना ह न, एक उसन बा० ५०
 सैकिण्ड ईयर से ही पढ़ाई छोड दी है । यह ठीक तो नहीं किया नरेश ने ।
 पर बी०ए० पास भी कर लेता तो क्या हो जाता ? कहाँ है नौकरी ?
 डिग्री लिए दर-दर घूमने से तो कहीं अच्छा है, पिता के बिजनेस मे हाथ
 बँटाए । क्या कमी है उनके घर ? और क्या कमी है नरेग मे ? उसकी
 आँखों की महुराई साफ बता रही है कि उनमे प्यार का महानागर ठाठे
 मार रहा है । प्यार ! किसके लिए ? मैं क्या जानूँ ? क्या जानना जरूरी
 है ? धायद । लेकिन क्यों ? मुझे अभी शादी थोडे ही न करनी है ? अभी
 न सही 'तो ?

फिर नरेश, नरेग, नरेग ! यह क्या हो गया है मुझे ? क्यों सोचने
 लगा हूँ, उसके बारे में इनना ? क्यों असम्भव के पीछे भाग रही हूँ ?
 लेकिन इसमे असम्भव क्या है कहीं ? हाय राम । क्या कर्ह ? किससे
 पूर्ण ? 'लीना से ? क्या कहेगी वह ? किसी लडके से बात तो करने की
 हिम्मत नहीं और चली है प्रेम करने । क्या यह प्रेम है ? इस शब्द पर
 तो मेरा ध्यान ही नहीं गया पहले । अभी भी समझ नहीं पा रही हूँ कि
 क्या मैं नरेग से प्रेम करने लगी हूँ ? क्या सचमुच ? नहीं, तो फिर ऐसा
 क्यों हो रहा है मेरे साथ ? हाय, कितना मुन्किर है यह मममना ।

एक बात और भी नहीं समझ पा रही हूँ । लीना, जो इतने लडकों के
 साथ हँसती-बोलती है, उसके साथ ऐसा क्यों नहीं हुआ ? शायद हुआ हो,
 मुझे बताया न हो उसने ? तो मुझे भी नहीं बताना चाहिए । - लेकिन मैंने
 लीना को कभी ऐसे उलझा हुआ नहीं पाया । क्या यह अपने मन की
 उलझनों को भी सहजता से छिपा लेती है ? शायद छिपा लेती हो । तभी
 हर हालत मे हँस सकती हो ? पर मैं लीना से नहीं छिपा पाऊँगी ।
 छिपाऊँगी तो ऐसे ही उलझी रहूँगी । क्या पता, कब क्या कर बैठूँ ? यह भी
 सम्भव है कि ठीक से पढ़ाई न कर पाऊँ और फिर पिछड जाऊँ । लीना से
 पूछना ही होगा । वही मुझे इस नई उलझन से उबार सकती है । थोड़ी
 किम्क है जरूर । पर लीना ही तो मेरी एकमात्र अतरंग सहेली है । उससे
 क्या छिपाना ?

ओह लीना ! अब भी तुम्हीं मुझे सँभालो । अपने आपको तुम्हारे
 हवाले कर रही हूँ !

सोच का यह वायरा, यह नजरिया क्यों ?

सीता

यह सता तो बड़ी छुती रस्नम निरली ! मैंने देखा है, सब्बर इम तरह की सङ्कियों के साथ ऐसा ही होता है । हर किसी से बुर भापनी किरेगी, फिर जैसे ही कोई सामने धापा कि सट्ट । नीना जोर रमा के साथ भी तो यही हुआ ! बस स्वय को कौना लेंदी और उलभी रहेंगी । निबलने का रास्ता उन्हें कोई दूसरा मुझाए । यह भी कोई बात हुई ?

अरे भई, ऐसा लगता है, ऐसे सपने आते हैं तो इममे क्या कोई नयी बात है ? हमारे सपनों मे क्या कोई नहीं आता ? कई बार हमे भी बँसा नही लपटा ? पर जानने है, अभी किसी के साथ उलभना नहीं है । देखना है, कौन कितने पानी में है ? मम्मी कहती हैं, 'पढ़ाई की पूरी अवधि-भर देसो । ये जो बीपक, राकेश, राजीव, रमण बारी-बारी से नजदीक आकर अपनापन जता रहे हैं—इन सभी को । पर एक दूरी बनाए रखकर । साथ घूमने-फिरने, हँसने-बोलने में कोई हर्ज नहीं । इससे बेकार की भिभक मिटती है । पुढी को, उनके मनोविज्ञान की समझने का भोका मिलता है । सोचने-समझने का वायरा बड़ा होना है । सामान्य मान बडता है । व्यक्तिव निखरता है । स्वर्ण की कुठाओ और घुटन से छुटकारा मिलना है । जीवन मे 'बोरिमत' नहीं, रस और ताजगी भरती है । काम बोझ नहीं लगता । समस्याएँ सालती नहीं । दिन अच्छी तरह कटते हैं । शामें हँसी-खुशी बीतती है । रातों को सुख की नीद भोते है ।'

मम्मी का बताया यह नुम्बर बडे काम आ रहा है और हम भजे मे अपनी पढ़ाई कर रहे हैं । कोई बाधा नहीं । कोई रुकावट नहीं । भय या चबराहट वा कोई काम ही नहीं । भय कौना ? बस अपनी सीमा जानो ।

क्याश मिष्ट मत्त हो। एकान में उनके साथ कहीं मन जाओ। लेकिन दोस्ती का 'घाट' हो निभाओ। यह क्या कि किसी लड़के ने निगाह धर देक लिया तो भागते फिर रहे हैं। दिन-भर उलझ रहे हैं और रातों की नींद बग़ाव कर रहे हैं। अरे भाई, तुम्हारा बचपन का दास्त है ना उममे बाउ करो। उसे देखो, परलो। टीक मने तो दोस्ती बढ़ाओ, नहीं तो छुड़ दो। क्या जरूरी है कि उससे उमभकर रह जाओ और तुरन्त शादी-क्याश की बाउ धसीट साओ बीच में? अभी क्या शादी के वार में साचने या निर्णय लेने की ह्पारी उम है? फिर बान न चीन, निर्णय की बान ही कहीं ने आ टपकी? मूर्ख लडा, क्या पहले कम गाँठें हैं तुम्हारे मन में, जो और कई-कई दासतो का रही हो? सबसे मिमो-जुलो, हँसा-बोमो का तुम्हारी गाँठें खुलें। मइकों की भजुवा या होवा क्यों उमभनी हो?

विमने-डुमने की बाग छडाने पर तो लता को जैमे माप मूँध गया। एकरव भूर ही गई और लयी बैठे ही चून्तो का बोना उमेठन, जैमे कि लइकी के बीच बँडकर अकसर करती है। बस चुरी और चून्ती की छाजन। कभी उमे उँवनी पर लोटे-खोच रही है तो कभी उमका बोना दीना में हवा-पवा रही है। अरे पाई कुछ बोल तो। मैंने टफाका और तो बह लयी सिगकने। बह उखकी पही आदत मुझे पसन्द नहीं। इसीम उमने कवरी यह हासत बना रखी है। समझ में नहीं आता, उग बंस डीक दिवा काए? मन करता है, दो-चार मइकों को इसके पीछे लगा दू। उग छेरे तंग करे और बुनकाई। लयी इसकी जूबाज लूनेगी। धर्मु कएके 'मजा का काएना।...मजा से यह ही तो दिवा मैंने। और तो यह लयी पर-पर दीने। अनुनय-दिनय करवे। मुझे तरस आ गया 'अकएल बाबा, नहीं कर्बेती देवा। पर कुछ बोल तो लही।'

और यह बोली। बोली क्या, जैमे रोने लयी। माँ का पहना। बाबूजी का उर। बोहू-ओ। माँ-बाप न हूए, पुसिख के दरोवा हो गए। मैं नहीं कम्बली, लइकी डीक बने तो कोई माँ-बाप ऐसी गेह मका लकने है? उम्मी बरव लकने है? पहरा, रोक और लकन' बही होतो है कहां दिवा मूक-दिलकर लइकों से मिलती है और माँ-बाप न छिराती है। के मूड बोलती है। कहाने बनानी है। और हस तरह कबना विरवाह

के 'स्कैण्डल' तो कभी कालेज के 'दादाओं' को मूर्ख बनाने की तरकीबें। कभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों की रिहर्सल, तो कभी पिक्निक। वजन पर पड़ाई सम्बन्धी गम्भीर चर्चाएँ भी। और ननीजा सामने है- हम में से कोई भी पढ़ाई में पीछे नहीं। कोई कभी फेल नहीं हुआ। किसी पर कोई आरोप नहीं लगा, न कभी किसी की प्रिंसीपल तक शिकायत पहुँची। सब हम इज्जत और प्यार की निगाह से देखते हैं।

मैं जानती हूँ, सता को यह सब अच्छा लगता है। मेरे माध्यम से वह सबका जायजा लेती रहती है। गायद इमीलिए मेरे साथ बिपकी भी रहती है। पर सम्झ में नहीं आता कि फिर वह इन गतिविधियों में भाग क्यों नहीं लेती? ऐसा भी क्या डर है उसे? उसके बाबूजी मेरे डेडी की तरह इन बातों में रुचि न लें, गुनें नहीं, प्रोत्साहन न दें, पर मना क्यों करेंगे भला? क्या वे नहीं चाहेंगे कि उनकी सड़की आगे बढ़कर कुछ सीने, कुछ बने और खुश भी रहे? माँ अनपढ़ है; नहो समझती, तो उसे न बताए। बाबूजी को ही विश्वास में लेकर चल सकती है। और नरेश से या किसी भी सड़के से मिलना-जुलना तो माँ के सामने भी होना चाहिए, बाहर ही नहीं और छिपकर तो कभी नहीं। मेरे हवाल में कोई भी माँ अपनी सड़की को दुश्मन नहीं होनी। वह कभी नहीं चाहेगी कि उसकी सड़की किसी से बात न करे और अन्दर-ही-अन्दर घुटनी रहे। सता का सम्झाना ही नहीं आता।

वह तो कहती थी, माँ पर की ब्यवस्था में कुछ भी रहोबदल नहीं करने देंगी। फिर कैसे हुआ वह सब? इस मामले में भी दूसरा कोई क्या कर सकता है! सता को स्वयं ही कोशिश करनी होगी। मैं नहीं समझती कि सता सम्झदारी से काम ले तो उसके ये बचन डीले न हों? न सही प्रयास आजादी। पर बंधनों को कोई सीमा तो होनी चाहिए? माँ-बाबूजी से बात करके सता ही यह सीमा निर्धारित कर सकती है। वह कोशिश ही नहीं करती।

गायद करती हो और परिस्थितियाँ साधन देती हों? रमा, नीना तो ऐसे ही रहती हैं। उनकी कोशिश क्या काम आई? पर क्यों? बरा स उम्र की अकुरलें न समझती

उछ की प्रतिक्रिया के दो छोर

सोना की मम्मी

बड़ी पिन्ता से भरकर लीना ने अपनी सहेली मता की समस्या मेरे सामने रखी है। पर मुझे इसमें कुछ भी अजीब नहीं लगा।

वय-सधि ! विजोरावस्था और तरणाई के बीच की एक अल्टूट, नाजूक और नासमझ उछ। नासमझ, पर समझने की धाह से कितनी भंगपूर !

सौग समझने क्यों नहीं कि यही धह उछ है जिसमे किशोरियां एक साथ बहुत कुछ समझना चाहती हैं। पर उन्हें समझा वही सकता है, जो उन्हें भगभे।

उम्र में इसकी प्रतिबिम्ब बहूत तीव्र होती है। तेजी से विकसित होते प्रान्तों में प्रतिबिम्ब शक्ति बनती है, प्रिम्बों का मन करने का प्रतिबिम्ब उल्टा पैदा होता है। इस प्रतिबिम्ब उल्टाहू में भरकर क्रिस्तोन्मिषों बहूत करवा पाहती है। उनके बूट बनने लगने होते हैं। प्रायः ऊँचे आडनों में भरपूर। बसनाएँ ऊँची-ऊँची उड़ानें भरती है—'ये वह बर्तनी'... 'ये वह बर्तनी।' बसना के इस रगोन मोह में निबरण करते समय प्रायः उम्र के धरातल का ध्यान नहीं रहता। और जब वे मोह-व्यवहार में धरती पर सीटनी है तो पानी है, प्रतिकूल स्थितियाँ, बर्तनीएँ और निम्बों के स्वर। भाषिक और गामाजिक सीमाएँ। सुरक्षा के लिए विद्याएँ, बर्तनी पढ़े। आदेश, उपादेश। बार-बार याद दिलाई गई सड़को होने के चेतना। और बग्यन बसमसाने लगते हैं। आक्रोश उमड़ने लगता है। रिश्वेदार और हितैषी दुश्मन लगते लगते हैं। चारों ओर का साग नन्मिषों विरोधी जान पड़ता है।

एक ओर, भीतर बनती यह प्रतिबिम्ब ऊँची पहने उनके उत्साह को उभारती है, फिर उसका अपव्यय उन्हें निराशा में डुबो देता है। उन्हें समझ में नहीं आता कि इस दायित्व का क्या करे? कैसे इसे राह दें? और राह न पाकर कूटिल होती दायित्व व्यर्थ की उदा-पटक, मोघ, उद्दण्डता, अवज्ञा, लापरवाही में बदल, विकृतियाँ पैदा करती है। या उदासीनता, निराशा, हीनता, संकोच में बदलकर नष्ट होने लगती है, जबकि इसी शक्ति के सही उपयोग से वे अपने भविष्य को संवार सकती हैं।

दूसरी ओर, धारीर के आकस्मिक परिवर्तन उनमें एक आश्चर्यलोक की सृष्टि करते हैं। उभारों की बसमसाहूट उन्हें एक अजीब मीठी अनुभूति से भर देती है। बनने-बँवरने, आकर्षक दिखने की क्षमता जाग उठती है। घर की बभाएँ बाहर की बातों में, भाई-बहनों की अगह सहेलियों में और सड़कियों की अगह सड़कों में खिच खिचती है। सड़कों के सानिध्य में एक पुलक, एक सिहरन होती है, जिसमें भय की अनुभूति भी मिली होती है। क्रिस्तोन्मिषों इन सारे परिवर्तनों को जानना-समझना चाहती हैं। स्वयं को भी। सड़कों की भी। दुनिया और उसके दस्तूरी की भी। जागकारी के अभाव में वे स्वयं अपने लिए ही एक अदृश पहलौ बनकर रह जाती हैं।

दूसरो को समझना तो तब उनके बस में होना ही नहीं।

जकरत है, इस 'अतिरिक्त ऊर्जा' के सही उपयोग की। और इस 'समझने की चाह' को राह देने की। पर कितनी माताएँ हैं, जो यह कर पाती हैं ?

किशोरावस्था को पार कर तरुणाई की दहलीज पर कदम रखने वाली लड़की न बच्चों में शुमार होती है, न बड़ों में। यदि वह बच्चों वाली अलहद बात करे तो उसे झिड़की मिलती है, 'टूतनी बड़ी हो गई, बात करने का शऊर नहीं। अब तुम छोटी बच्चों नहीं हो। बीच-समझकर बोलो। मनोके से पहनो-ओढो। डग से चलो।' यदि वह बड़ों वाली समझ-दारी की बात करे या कुछ पूछ बैठे, तो भी झिड़की 'अभी से बड़ों की बात में टाँग मत अढ़ाओ। अभी तुम्हें क्या समझ है ? समय आने पर खुद ही समझ जाओगी।' आदि। नलीजा होता है, लडकी घर से कटने लगती है और बाहर की बातों में अधिक रूचि लेने लगती है। उस पर यदि माँ-बाप पुराने दकियानुमी विचार के हुए, तब तो बेचारी की हालत और खराब हो जाती है। बाहरी दुनिया और घर के वातावरण में कोई तालमेल न बैठ पाने पर उसकी अस्थिरता या उबल-पुषल और बढ़ जाती है।

सोना पुछती है, 'लता ऐसी क्यों है ?' और वह ही भी कौसी सकती थी ? उसकी समझने की चाह को राह नहीं दी गई। उसकी अतिरिक्त शक्तियों को किन्हीं हावियों और खेल-कूद में नहीं लगाया गया। मनोरंजन के अभाव में उसकी रंगीन कल्पनाएँ धूमिल पड़ती गईं। लड़की की तस्वीर उसके सामने भय, सदेह के धिले-धिले अबूके रंग में डुबोकर भंग की गई। जब कुछ भी सहज ढंग से नहीं चलता और चारों ओर निर्घेष की शीशारें कसने लगती हैं तो बचपन में पढ़ों में ग्रथियाँ इस उम्र में अधिक सन्धिय हो उठती हैं। ये ग्रथियाँ यदि किशोरावस्था में भी न खोली गईं तो आगे चलकर ग्रथियों से भरा यह ध्वनिस्वर्ग वैवाहिक जीवन को भी कूड़ाप्रस्त बना देता है। और दोष दिया जाता है, कभी पति को, कभी सास को, कभी पत्नी को, तो कभी दहेज जैसी सामाजिक रीतियों को। मद्यपि वैवाहिक असफलता में इन सबका भी कुछ न कुछ हाथ होता है, पर इसके पीछे अधिकतर किशोरावस्था में पड़ी ये ग्रथियाँ ही होती हैं, जो

कहने में कोई मकोच नहीं कि लीना से बालेज की बातें सुनते कई बार मुझे लगा, 'बाबा ! हम भी कालेज में पढ़े होने ?' क्या मधुमुष एक माँ अपनी तरफ बेटों में अपनी बीती तरफाई को नहीं जीती ?

यह सब बताकर मैं कहना चाहती हूँ कि माँ अपनी उम्र को याद कर और बदले जमाने को देखकर बेटों के साथ पेश आए तो वे दूरियाँ मिट सकती हैं। वे कुंठाएँ कट सकती हैं और देश की अनगिनत प्रतिभाएँ व्यर्थ होने से बचाई जा सकती हैं। हमारा काम है, सठकियों को ऊँच-नीच समझा देना और उन्हें राह गुमा देना—बस। अपना भगला रास्ता वे थोप ही खोज लेंगी। हमें उनके पीछे लपकर जामूनी करने की कोई जरूरत नहीं। जिस दिन लीना ने आकर दीपक के बारे में मुझसे पूछा, मैं तो उसी दिन निश्चिन्त हो गई थी कि मेरी बेटों को कोई गलत कदम नहीं उठाएगी। यदि कभी अनजाने में या कारणवश किसी विषम स्थिति में फँस भी गई तो उसे विश्वास होगा कि हम उसकी सहायता के लिए तैयार हैं। इस सुरक्षा, इस विश्वास और निर्देशन की छाँड़ में ही तो वह निर्भय होकर आगे बढ़ रही है। कितनी योग्यता और ताकतप्रियता अजिब करके। सभी की चहेती। एक चहचहाती हुई चिड़िया-सी। धीरे-धीरे महज भाव से एक-एक पंखुड़ी खोलने हुए फूल बनती बनी-सी। लता की तरह चटखती, कसमसाती या फूल बनने के लिए छटपटाती कली नहीं, जो खिलेगी जरूर, पर पूर्ण विकास, पूर्ण सुगन्ध लेकर नहीं।

लता का इसमें दोष नहीं। दोष है उम्र का और उसे घेरने वाले वातावरण का। लीना कहती है, मैं बाबर उमकी माँ को समझाऊँ। उसके बाबूजी से बात करूँ। अर्थ है। यह तब हो सकता था, जबकि लता ने कोशिश करके हमारे बारे में उनकी पूर्वधारणा को बदलने में पहले कुछ सफलता पाई होती। वह तो ऐसी कोशिशों से बचती रहती और निराशा में डूबती रही। लीना भी अपनी उम्र के अतिरिक्त उत्साह और आशावाद में उसे ठीक से समझ नहीं पाई।

लता की समस्या का हल न उसके निराशावाद में है, न लीना के अति आशावाद में। दोनों की स्थितियाँ भिन्न हैं। इसलिए समाधान भी भिन्न हैं। लीना अभी इस भिन्नता को नहीं समझ सकती। समझती तो समय

विश्वीयता का सामर्थ्य दिखाना

मना को संभालनी । अपनी विचित्र से सुनना वह वह को सुनना
पुकारती रही । या उनसे विचारना अथवा बहसना उसे और होना
की जाती रही । सीमा का भी बोध नहीं । उनमें अतिरिक्त उल्लाह है,
अतिरिक्त विचार । उस को अतिरिक्त के ही छोड़ । उसको
की एक पहचान ।

एक लम्बा सीमा की दिखाने की है, उसे उनसे हटती है । या लम्ब के
सुनना ही होता । अभी भी ज्यादा देर नहीं हुई है । सीमा के
, अभी उसे भी मान लेते ।

तो क्या यह प्रेम नहीं !

सतरा की सोच

कितने सहज भाव से सीना की मम्मी ने मुझे पाम बैठाकर सब पूछ लिया, "क्या तुम किसी से प्रेम करने लगी हो ?" मैं तो शर्म से पानी-पानी हो गई। भला क्या उत्तर देती ? सिर झुक गया उनके सामने। आँख ऊपर उठनी ही न थी। तभी उन्होंने पीठ पर हाथ रखा, "शर्माओ नहीं, प्रेम करना कोई गुनाह नहीं है। मुझे बता दो ठो, हो सकता है मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकूँ !"

मैंने सिर उठाया और आँखें उन पर टिका दी। पर विस्फारित-सी उन्हें देखती ही रह गई, मुँह से बोल एक नहीं फूटा। मुझे यकीन ही नहीं आ रहा था कि कोई माँ प्यार से ऐसे भी पूछ सकती है या कोई बेटी माँ से इस तरह बात कर सकती है जंमे सामने माँ नहीं, कोई सहेली हो। एक मेरी माँ हैं। उन्हें भनक तो पड़े कहीं से ऐसी, बिल्ला-बिल्लाकर सारा घर सिर पर उठा लेंगी।

मेरा असमंजस देख सीना की मम्मी ने फिर मेरा सिर सहलाया, "बना दो बेटी, प्रेम के नाम से इतना भय क्यों ? यह किनी बुराई का नाम नहीं। यह तो मन की एक पवित्र भावना है। मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली, उसे जीना सिखाने वाली भावना, जो घृणा, छल-कपट, क्रूरता जैसे दुर्गुणों को काटकर मन को गंगा-सा निर्मल बनाती है। ऐसा पवित्र शब्द 'प्रेम' गुनाह कैसे हो सकता है !"

छक्कड़, अंधड़-सूफान भरे मन-मलिनर्क मे जैसे भीतल
... । लगा, वे कहती रहें, मैं सुनती रहूँ। बस, वे मुझे
उत्तर मैं दे नहीं पाऊँगी। मैं क्या जानती भी हूँ ? मेरे मुँह

ना ही निकला, "तो तो फिर ?"

लीना की मम्मी ने तुरन्त बात को आगे पकड़ लिया, "फिर उस पर टोक बघो, यही न कहना चाहती हो ? मैं भी यही चाहती हूँ कि तुम इन पूछो। यही बघो, इस सम्बन्ध में जो भी तुम्हारे मन में दुविधा है, वो शकलें हैं, उन सबपर खुलकर बात करो।"

'मुझे समझ में नहीं आता ?'

'हाँ-हाँ, कहो, क्या समझ में नहीं आता ? जो नहीं समझता, उन्हे । जिसे नहीं जानती, उसे जानो।'

'मैं नहीं जानती, नरेण मुझे इस तरह छिटककर, निगाह भरकर क्यों है ? बात तो उसने कर्भा कोई ऐसी-वैसी की नहीं, मिठाव-किताव-न लेने-देने के, फिर ?'

'तुम यही जानना चाहती हो न कि क्या वह तुम से प्रेम करता है ?'

'... ' उत्तर में फिर केवल मेरा सिर झुक गया।

'और इस बात को लेकर ही इधर दिन-रात परेशान रहने लगी हो ?

और बात-बात में भूलने लगी हो ? और पडाई में पिछडने लगी

और " मैं भयभीत हो उठी, 'हाथ राम ! इन्हे यह सब कैसे

?' " - - और इस तरह भय खाने लगी हो कि किसी को पना न

ए यही न ?'

'हाँ-हाँ ही आई। जैसे मेरी चोरी पकड़ी गई हो। उठकर भागना

पर भाग भी न सकी। हिम्मत करके बह ही तो दिया, "आप तो

हैं आंटी, मेरी माँ, बाबूजी ।"

हाँ-हाँ, खूब जानती हैं उन्हें। पर क्या तुम्हें नहीं जानती ? यह क्या

बना रखी है तुमने अपनी ? जाननी भी है पगली कि प्रेम क्या

फिर अवाह ! बस उनकी ओर लाकती रह गई। फिर उन्होंने

... " प्रेम तो बहुत मधुर, बहुत उदार, बहुत ब

। इसे सार्वजनिक धारण से जोड़ लेना ठीक नहीं। यह न।

मायना है, न बच्चों का खेल। इसे महज तिनेमाई धर्म में दे

... जैसे आज के तिनेषा के पदार्थ और त्रिन्दती के पदार्थ में

है—समझती हो न ?” मैंने मिर हिलाया, “बैसे ही तुम्हारी इस कच्ची उम्र की अचकचरी समझ और ध्यान का अर्थ समझने सामक सही उम्र की परिपक्व समझ में भी अन्तर होना है। यह ”

हाय, मैं तो बह मज मूल ही रही हूँ कि उन्होंने इस बोच क्या-क्या कहा। मैं पूरी तरह अपने आपमें बी ही कहीं ? हाँ, उन्होंने आगे कहा था, “बचराओ नहीं, तुमने कुछ गलत नहीं किया, गलत नहीं सोचा। इसमें तुम्हारा दोष नहीं। यह उम्र ही ऐसी है। इस उम्र में लड़के-लड़कियों के बीच आकर्षण स्वाभाविक है। यह न हो, वही अस्वाभाविक बात होगी। इसलिए इसे लेकर चिन्तित या चिन्तित होने की जरूरत नहीं। केवल तुम्हें यही समझना है कि यह सहज विपरीतलिंगी आकर्षण न तो कहीं उरसती है, न पाए। इसे घभी, इस स्तर पर ‘ध्यान’ का नाम भी नहीं दिया जा सकता। यह मात्र तुम्हारी उम्र का लकावा है। उसकी स्वाभाविक भाँ है। सामाजिक बधनों(नहीं नियमों)के कारण परस्पर दूरी में यह आकर्षण कमदा लगता है। करीब आने पर अकरी नहीं कि यह लडका तुम्हें इन्ही तरह भाये। या भाये भी तो यह आकर्षण देर तक बना रहे। इस उम्र में कुछ भी स्वाधी नहीं होना—न सोच, न पसन्द, न भावना, न आकर्षण। इसलिए निर्णय या चुनाव की यह उम्र नहीं है। भावुकता में बहकर जल्दबाजी में उठाया गया कोई भी कदम सही निर्णय या चुनाव की ओर नहीं ले जाएगा। उससे बाद में पछलाना पड सकता है। इसलिए माँ, बाबूजी की बात छोडो, पहले तुम अपने को तो जानो !”

मैं बड़े ध्यान से उनके बातें सुनती रही। ‘नियम’ या ‘बधन’ की बात पर झुलासा भी करना चाहा, पर चुप रही कि बाद में कभी पूछूंगी। पर यहाँ आकर तो मैं फिर उलझ गई। बड़े आराम से उन्होंने कह दिया, “पहले अपने को तो जानो !” यही तो मुख्य सप्रसया है ! सचमुच मैं नहीं जानती, मैं वास्तव में क्या थादनी हूँ। यही मालूम होता तो अपने आपमें उमरकती क्यों ?

आजकल तुम अपने पहनने-ओढ़ने में अधिक रचि नहीं लेने लगी ? शीशे के सामने खड़ी होकर स्वयं को मुग्ध भाव से नहीं निहारती ? महिलियों की निगाह से स्वयं को नहीं देखती ? कहीं कोई कमी या कुरूपता दिखाई देती है तो उसे लेकर चिंतित नहीं होती ? सुन्दर बनने या दिखाने की सातसा तुम्हारे भीतर पहले से कहीं अधिक नहीं जाग गई ? यह सब क्या है ? क्या यह तुम्हारे भीतर से उठी प्राकृतिक माँग नहीं ? और इसी में कहीं यह भीतरी माँग भी शामिल नहीं कि लडके भी तुम्हारी ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखें ? बोलो है कि नहीं ?”

मेरी बोलती फिर बंद। शर्म से सात होकर मैंने केवल तिर हिता दिया। आगे मुनने के लिए कान खड़े कर लिए। वे कहती जा रही थीं, “अपने से पूछो, क्या तुम्हारी यह सज-धज केवल नरेश के सामने जाने के लिए ही होती है ? दूसरे सहपाठी लडकों से क्या तुम अस्तव्यस्त दना में मिलना पसन्द करोगी ? नहीं न ? तो इस एक बात से ही समझो कि तुम्हारे भीतर की यह माँग किसी एक से नहीं जुड़ी। यह तो इस उम्र की एक सहज प्राकृतिक माँग है। सक्रोध या भय से तुम जितना ही इसे दबाती हो, इस ओर तुम्हारा धितन उसी अनुपात में बढ़ जाता है। नरेश तुम्हारा बचपन का साथी है, पड़ोसी है, घर के पास तुम्हें सहज उपलब्ध है, इसलिए अपनी इस भीतरी माँग को तुम उसके साथ जोड़कर देख रही हो। उसकी जगह कोई और लडका तुम्हारे सम्पर्क में आता, तब भी तुम यही करती। रही मान नरेश की, तो वह भी तो इस उम्र की इसी प्रक्रिया में गुजर रहा है। उसे भी किसी लडके का साथ चाहिए। रोज-रोज सामने पढ़ने से उमर का तुम्हारे साथ कुछ भगाव हो गया सपना है। जो लड़के-लड़कियाँ परेसू कागजरग के दबाव में आपस में ज्यादा बटे रहने हैं, सहज साथ तो पकड़कर मिल-जुल नहीं पाते, उनके साथ भगवत ऐसा होता है कि जो परा

धीरे पकने-पनपने दो। नरेश को प्रेमी नहीं, मित्र मानकर उससे मित्रता बढ़ाओ। निकट आने पर धीरे-धीरे उसके सारे रूप तुम्हारे सामने खुलने लगेंगे। उन्हें खुलने दो। तभी न तुम उसकी परख-पहचान कर पाओगी। अभी तो तुम उसे निकट से जानती ही नहीं। तो तुम्हारे बीच प्रेम कैसा ? नहीं, यह प्रेम नहीं है। यह केवल दूरी का विपरीतलगी घाकर्षण है। यदि तुम अनावश्यक संकोच छोड़, पसन्द के अन्य सहपाठी लड़कों के साथ भी इसी तरह सहज मैत्री माध से मिलने-जुलने लगोगी तो तुम पाओगी कि कहीं कोई उन्मत्त नहीं है और दुनिया में नरेश से अच्छे भी कई लड़के हैं। अन्तिम पसन्द या चुनाव की बात तो सभी आएगी न, जबकि तुम्हारे पीछर धीरे-धीरे वह परख-दृष्टि विकसित होगी। फिलहाल न तो तुम इस स्थिति में हो, न नरेश कि एक-दूसरे को लेकर विवाह का सपना देखने लगे। नाममक उद्य में अमंभव के पीछे भागने से ही प्रायः असफलता हाथ लगती है और तुम लोग दोष देने लगते हो सामाजिक बधनों को, या माय्य को या माना-पिता को।

“बधनों या रुढ़ियों से विद्रोह की बात भी दुरी नहीं। पर यह तभी उठती है, जबकि पहले अपना चुनाव या निर्णय नहीं हो। विद्रोह सफल भी नहीं होता है, जब विद्रोह के परिणाम भेलने की सामर्थ्य हो, आर्थिक निर्भरता हो, व्यवहार-बुद्धि विकसित हो और इसकी परिपक्व समझ हो। इन सबके अभाव में असफल विद्रोह और निरर्थक कष्ट-सहन को ही आमंत्रण देना होगा... नहीं ?” कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा।

मैंने गहमति में सिर हिलाया। कोई उत्तर देने की स्थिति में मैं अभी भी नहीं आ पाई थी। उनकी बातों ने मुझे झकझोरकर रख दिया था। मैं इनकी अभिमूर्त हो उठी थी कि उस समय कुछ विदोष सोचने-नाममले की स्थिति में ही नहीं रही थी।

मैंने राहू की घाँस ली और उन्हें धन्ववाद देती हुई उठ सड़ी हुई
जाते-जाते फिर टिठकी ओर मुस्किस्त से बहू पार्द, "अगली बार क
दोना को भी साथ रघिएगा।"

वे हँस दी, "इसका मतलब है, अभी भी तुम्हारा डर-संकोच र
हीं। कोई बात नहीं, यह धीरे-धीरे ही जाएगा। पर अब कम से कम :
जान गई हो न कि यह डर तुम्हारे अपने भीतर का ज्यादा है, स
मूजी का कम। धैर, इसपर भी बाद में बात करेंगे।"

सभी से मैं सोच रहो हूँ, क्या सचमुच यह प्रेम नहीं?.....अब त
आर है अगली बातचीत का।

अजीब उलझन है

लता और सीता

“बहो लता, क्या हालचाल है तुम्हारे नरेज के ?”

“कैसे पूछ रही हो ? नरेज मेरा कोई क्यों होगा ?

“बनो मत । क्या उसे लेकर ही तुम पिछले दिनों परेशान नहीं थी ?”

“थी, अब नहीं ।”

“क्यों, क्या लड़ाई हो गई उससे ?”

“दोस्ती ही सब थी ?”

“अजीब लड़नी हो तुम ! जब दोस्ती ही नहीं थी तो उसे लेकर इतनी भी क्यों थी ?”

“उलझी तभी न थी कि दोस्ती नहीं थी ।”

“अब क्या दोस्त बना लिखा उसे ?”

“नहीं ।”

“नब ?”

“जब न दोस्ती है, न उलझन । फिर भी ।”

लगती हो।”

“अच्छा तो समझाओ, क्या है तुम्हारा संकल्प ?”

“उसे पाने का नहीं, उसका ह्याल छोड़ने का।”

“तो छोड़ दो ह्याल। दुनिया में और लड़की का कोई अकाल तो नहीं पड़ गया ?”

“फिर मजाक ! हाँ, भई, क्यों न करो मजाक ! तुम्हें आशाही है, मुविधा है, चाहे जिससे दोस्ती करो, जब चाहे तोड़ दो।”

“दोस्तरियाँ ही करती हूँ न, उनके साथ उलझती तो नहीं ? यह क्या कि सहपाठी लड़की से भी बात न करो और जिस भोड़ू से लड़के में वाग करने का भी साहस नहीं, उसे लेकर उलझते फिरो। पता नहीं, कब तुम इस कुठा से मुक्त होओगी और कब तुम्हारा दिमाग ठिकाने आएगा ?” लीना ने सापरवाही से सिर को झटका दे माथे पर झूलती अपनी लटो को पीछे किया।

सत्ता रझाँसी हो आई। नरेश के लिए ‘भोड़ू’ शब्द उसे झल गया। पर वह लीना के क्षुब्ध स्वभाव से परिचित है। उसके मुलभे दिमाग में इतनी अभिभूत है कि उसकी बात का उसने बुरा नहीं माना। उलटे तौर में पढ़ गई, ठीक ही तो कहती है लीना ! नरेश मुझमें उच्च में, अनुभव में बड़ा है। उसमें इनकी अकल तो होनी ही चाहिए कि केवल देखते न रहकर, आगे बढ़, दोस्तों का हाथ चढ़ाए। कम से कम बात करने का साहस तो दिलाए ! सगना है, वह भी मेरी तरह डरता है—पना नहीं, मेरे पर बालों से, या अपने पर बालों से, अपने से ही। सचमुच यह दोस्त बनने लायक है, भी नहीं। फिर फिर भी न जाने क्यों मुझे अच्छा लगता है। जान क्यों ?

“जिन घोष में पढ़ गई मलू ?” लीना ने टहोका तो उते होग आवा, “नहीं-नहीं, जिन घोष में नहीं हूँ मैं। बत बाने की ही गमभने की कोशिश कर रही हूँ। ...मम्मी ठीक ही कहती थी, ‘पहले अपने आगको जानो।’ यही तो—”

बात है ! तुम मेरी मम्मी से जिन चुकी हो ! मैं भी
... से आवा ? क्या तक तो नरेश... नरेश, नरेश

ही लट्टू की तरह धूम रहा था तुम्हारे मन में, और अब एकदम उसका श्वात छोड़ देने का सकल्प किया जा रहा है—खूब।” सीता ने फिर ठहाना लगाया।

सता फिर रोने-रोने को हो आई, “ओट तुम हँसो हँसो, खूब हँसो। यह नहीं कि मदद करके मुझे इस भँवर से निकालो।”

“वही तो कोशिश करती रहती हूँ। पर जिसे भँवर में डूबते-उगराने ही मजा आता हो, उसका कोई क्या करे?”

“मुझे इसमें मजा आता है?”

“और नहीं तो क्या, वना मुनती न मेरी?”

“क्या नहीं मुनती?”

“यही कि भिन्नक छोड़ी और सहपाठी मिल-मगडली के बीच रहते समय अलग-अलग न रहो। सबके साथ घुलो-मिलो। वे कोई हीवा नहीं हैं कि तुम्हें खा जाएँगे। उनसे बोलो-बतियाओ। तुम्हारी कुछाएँ कट जाएँगी।”

“यह क्या मेरे लिए भी उतना ही आसान है, जितना तुम्हारे लिए?”

“क्यों नहीं, घर वालों से-चोरी-छिपे कुछ मत करो तो वे जरूर विश्वास करेंगे। फिर हम किसी मलत रास्ते पर तो नहीं जा रहे? कुछ गलत काम तो नहीं कर रहे। मला मेल-जोल और सहज मैत्री पर किसी को क्या ऐतराज होगा?”

“तुम नहीं समझती सीता। समझने की कोशिश भी नहीं करती। क्योंकि तुम्हें ऐसी किसी परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ा। मुझे कहना नहीं चाहिए, पर जानती हो, मेरी माँ तुम्हें अच्छी लडकी नहीं समझती। इसलिए तुम्हारे साथ भी मेरा अधिक मेल-जोल उन्हें पसन्द नहीं और तुम लड़कों की बान करती हो?”

“यह सब क्या मैं जानती नहीं?”

“फिर भी—फिर भी तुम ऐसा कहती हो? फिर भी तुम मेरे साथ नहीं छोड़ना चाहती? तुम्हें अपने मानापमान का भी ध्यान नहीं?”

“मैं ऐसी बाजों की परवाह नहीं करती। मेरे पापा-मम्मी मुझे अच्छे तरह जानते हैं; मुझपर पूरा भरोसा रखते हैं, फिर मैं दूसरो

सपत्नी हो।”

“अच्छा तो समझाओ, क्या है तुम्हारा संकल्प ?”

“उसे पाने का नहीं, उसका ख्याल छोड़ने का।”

“तो छोड़ दो ख्याल। दुनिया में और लड़की का कोई अवान ? पड़ गया ?”

“फिर मजाक ! हाँ, भई, क्यों न करो मजाक। तुम्हें आ सुविधा है, चाहे जिससे दोस्ती करो, जब चाहे तोड़ दो “।”

“दोस्तियाँ ही करती हूँ न, उनके साथ उनभती तो नहीं ? कि सहपाठी लड़की से भी बात न करो और जिस भौड़ से सब करने का भी साहस नहीं, उसे लेकर उनभती फिरो। पता नहीं इस कूठा से मुक्त होओगी और कब तुम्हारा दिमाग ठिकाने ? नीना ने लापरवाही से सिर को भटका दे माथे पर झूलती अपन

ने भी कही थी। सगता है, लीना ने उनकी बातों को अपने में उतार लिया है। तभी तो लीना इतनी निर्विचल है, इतनी सुलझी हुई है। लीना की मम्मी ने यह भी कहा था कि यह आकर्षण या यह लगाव या क्यात प्रेम नहीं है। ठीक तो है, प्रेम होता तो क्याल छोड़ने की बात ही कहाँ से आती ? तो फिर प्रेम क्या होता है ? क्या होता है प्रेम ?

लीना ने पकड़कर भिभोड़ा, “कहाँ खो गई फिर ? तुम्हें तो पास खड़े-खड़े भी खोजना पड़ता है,” तो सता के मुँह से अचानक फूटा, “अजीब उलझन है ?”

“क्या उलझन है ?”

“यही प्रेम-वेम अच्छा, तुम्हीं बताओ प्रेम क्या होता है, कैसे होता है ?”

लीना ने पहले उसी तरह एक ठहाका लगाया, फिर भुँभना उठी, “अजीब घनचक्कर हो तुम भी, प्रेम की परिभाषा क्या जरूरी है ? या यह इतनी आसान है कि उसे चंद शब्दों में बताया जा सके ? फिर अभी, इसी वकन क्या जरूरत पड़ गई तुम्हें यह ध्यानवीन करने की ?”

“अभी न सही, पर जानना-समझना तो चाहिए न !”

“तो इतना जान ली कि सिनेमा और सस्ते उपन्यासों में जो मूर्खता दिखाई जाती है, कम से कम यह तो नहीं ही है।”

“तो ?”

“मुझे नहीं भावूम, जब किसीसे होगा, तब बताऊँगी।” लीना फिर भुँभना उठी।

“तुम तो बात को टालती हो।”

“नहीं तो क्या करूँ ? और कुछ करने की नहीं है कि इस बात को लेकर बेचारा में मायापञ्ची करने बैठ जाऊँ ? - कहाँ न, नहीं जानती, जब जानूँगी, तब बताऊँगी।”

“तो दीपक के साथ महीनों रहकर सुन क्या करती रहें ?”

“हम दोनों दो दोस्तों की तरह एक-दूसरे को जानने-समझते रहे। एक बार अरा-नी उलझी थी “उससे नहीं, अपने आगे—कि मम्मी ने जीस सुलझा दिया। बस, उसके बाद कुछ नहीं। हम साथ भी दोस्त हैं,

सुलकर ही पूछना-जानना होगा।' तभी अपने से उबरकर उसने लीना से छ लिया, "लीना, मैं इस रविवार को तुम्हारी मम्मी से फिर मिल रही हूँ। इस बार तुम भी साथ बैठो न प्लीज।"

"नहीं, मुझसे नहीं होगा यह। तुम जागो और मम्मी जानें। मुझे कुछ नहीं समझना है।"

"न सही। पर क्या, मेरे लिए तुम साथ भी नहीं बैठ सकती?"

"क्यों, तुम्हें धकेले क्या होता है? क्या मेरी मम्मी से भी डर लगना है तुम्हें?"

"नहीं, उनसे डर बिल्कुल नहीं लगता। फिर भी वे बड़ी है, मेरी माँ समान हैं। उनसे झिझक तो लगती ही है न!"

"तब ही चूका तुम्हारा कल्याण। झिझक लेकर बैठो और इसी तरह अपने आपमें उलझती रहो।"

"प्लीज लीना।"

"पहले वायदा करो।"

"क्या?"

"यही कि तुम झिझकोपी नहीं। सुलकर बातचीत करोगी। प्रश्न भी सुन्हीं करोगी, मैं नहीं। मुझे कुछ बोलना होगा, तो बोलूंगी, बर्ना केवल सुनूंगी।"

"ठीक है। मजूर है, तुम्हारी शर्त। पर तुम बैठना जरूर कि मेरी हिम्मत बची रहे। जानती हो, मम्मी ने क्या कहा था?"

"क्या कहा था?"

"यही कि अगली बार ऐसे छुईमुई होने से नहीं चलेगा। कुछ जानना-समझना है तो मन की गाँठें खोलनी होंगी। इसके लिए तैयार होकर आना।"

"यही तैयारी है तुम्हारी कि मुझे साथ बाँध रही हो?"

"नहीं-नहीं, मैं सचमुच तैयार होकर आऊँगी, तुम देखना तो सही। पास रहोगी, तभी न देखोगी कि मैं तुम्हारी आशाओं के अनुरूप चल रही हूँ कि नहीं। तुम्हारी सिकायत भी तो दूर करनी है कि नहीं मुझे?"

"धलो, कुछ साहस तो आया तुममें। अब देखना है, तुम क्या करती

पर परस्पर उपभेद हुए नहीं। गाव-गाव लेनने जाते हैं। बाजबोज होते हैं—वे कम गिनेवा, हीरो-हीरोइन या लड़के-लड़कियों पर ही नहीं, पर विधवा पर, रक्षियों पर, हाथियों पर। अपनी रक्षियों और विधवाओं पर परस्पर आशान-प्रदान करते हैं। एक-दूसरे से कुछ सीगो-ममने हैं। एक-दूसरे को भेकर भाड़े नहीं भ्रान्ते, रागों को नींद गराव नहीं करने—समझी !”

“अब मैं सही, पर सब बचाना, क्या उन दिनों भी तुम्हें दोषक को भेकर कुछ नहीं होता था ?”

“बहुत न, कुछ दिन ऐसा सया था, फिर जन्मी ही पता चल गया कि वह प्रेम नहीं था।”

“कैसे पता चल गया ? क्या बिना जाने कि प्रेम क्या होता है ?”

“हाँ, बिना जाने। पर सच, यदि साथ मानो तो भाव भी मैं टीक-टीक नहीं जानती कि प्रेम क्या होता है। मुझे भी उताही तोय है। जिस दिन जानूँगी, जरूर बगाऊँगी। पर यह जरूर जानती हूँ कि दोषक न तब मेरा प्रेमी था, न अब है। फिर भी हम अच्छे दोस्त हैं। एक-दूसरे की रज्जव करने हैं। हमारे इस सम्बन्ध में स्नेह भी है, लगाव भी, पर प्रेम को मग्न इसे नहीं दी जा सकती। कम से कम इस स्तर पर तो मैं इस बारे में सोच भी नहीं सकती।”

“फिर ?”

“आगे के बारे में कुछ नहीं कह सकती मैं अभी। हमारे बीच प्रेम विकसित हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। होगा, तो भी यह विकास सहज होना चाहिए—नहीं ? जबरदस्ती इस विधा में क्यों सोचने लगूँ मैं ?”

“इसका मतलब है, प्रेम अचानक नहीं होता, धीरे-धीरे विकसित होता है ?”

“हाँ, मुझे तो अभी तक यही मालूम है। पर मैं सबके बारे में क्या जानूँ ? और क्यों जानूँ ? हम अपने आपको जानें, क्या यही काफी नहीं है ?”

सता फिर अपने भीतर डूब गई, ‘धूम-फिरकर बात फिर वही आ जाती है, ‘स्वर्ग को जानो’। लेकिन कैसे ? इस बार लीना की मम्मी से

तो फिर क्या है प्रेम ?

लता, लीना और लीना की मम्मी

“आ गई बेटो ! बेटो ! लीना भी आज घर ही है। अभी तुम्हारा इन्तजार ही कर रही थी। लो, वह आ गई। तुम दोनों बैठो, मैं अभी चाय बनाकर लाती हूँ। फिर इतमीनान से बैठकर गपशप करेंगे।” कहकर लीना की मम्मी उठ खड़ी हुई कि लीना ने आकर अपनी लाउ-परी बांह फँलाई और उन्हें कंधों से पकड़कर बैठा दिया, “नहीं मम्मी, आप लोग बैठकर बात करो, चाय मैं बनाकर लाती हूँ।” और वह फुदकती हुई रसोईघर की ओर बढ़ गई।

“चाय और गपशप !” लता सकोच से भर आई। “इस हलके-फुलके वातावरण में गंभीर चर्चा के लिए तो कोई गुआइश ही नहीं दीखती ! शायद लीना की मम्मी भूल गई हैं कि उन्होंने मुझे आज किसलिए बुलाया था ! नहीं नहीं, गभीरता की बात ही क्या है इसमें ? कोई समस्या तो नहीं उठ खड़ी हुई है मेरे साथ कि उसे लेकर मैं गंभीर हुआ जाए ! वह तो मुझे ही न जाने क्या हो जाता है कि बात का बतगड बना, चिंतित हो खटती है और गभीरता ओड लेती है। लेकिन क्या सचमुच में इसे ओडती है ? क्या मैं भीतर से ही ऐसी नहीं हो गई हूँ ? मैं ही क्यों, मेरे जैसी स्थिति में कोई भी ऐसा हो सकता है। जैसे हालात होंगे, स्वभाव भी तो वैसा ही बनेगा !” सिर झुनाए, अपनी चुन्नी का कोना उमेठी, लता मन ही मन यह गुन रही थी और सामने बैठी लीना की मम्मी चुपचाप उसकी इस भाव-भविष्या को पढ़ रही थी। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद उन्होंने लता को जैसे धोते से जगाया, “पढ़ाई फँसी चल रही है बेटो ?”

“अं ठीक ही चल रही है मम्मी। नहीं-नहीं, कुछ खास नहीं चल

हो और कितना बदलती हो ! अच्छा तो फिर मिससे । मम्मी को बोल दूंगी, तुम रविवार को आओगी और बातचीत के लिए तैयार होकर आओगी ।”

“नहीं, इतना ही बोलना, कि आऊँगी ।”

“सग, यहीं बइसने सगी ?”

“नहीं, पहले देगूँ तो सही ।”

“किसे ?”

“अपने आगबो, और किसे ?”

“अच्छा बाबा, देखो, शूब अकडो तरह देखो । मैं तो चलती हूँ अर । हाथकासतली । लोनों हँसने सतली है—सतर सतति हल सीना गुनवर ।

तो फिर क्या है प्रेम ?

लता, लीना और लीना की मम्मी

“आ गइं बेंटी ! बेंठो । लीना भी आज घर ही है । अभी तुम्हारा इन्तजार ही कर रही थी । लो, वह आ गई । तुम दोनों बेंठो, मैं अभी चाय बनाकर लाती हूँ । फिर इनमीनान से बैठकर गपगप करेंगे ।” कह-कर लीना की मम्मी उठ खड़ी हुई कि लीना ने आकर अपनी साठ-भरी बाँटि फेंलाई और उन्हें कंधों से पकड़कर बैठा दिया, “नहीं मम्मी, चाय लोग बैठकर बात करो, चाय मैं बनाकर लाती हूँ ।” और वह फुदकती हुई रसोईघर की ओर बढ़ गई ।

“चाय और गपगप !” लता मकोच ने भर आई । “हम हलके-फुलके वातावरण में गभीर चर्चा के लिए तो कोई गुंजाइश ही नहीं देखती । चायद लीना की मम्मी भूल गई हैं कि उन्होंने मुझे आज किसलिए बुलाया था । नहीं नहीं, गभीरता की बात ही क्या है इसमें ? कोई समस्या तो नहीं उठ खड़ी हुई है मेरे माप कि उसे लेकर मैं गभीर हुआ जाए ! वह तो मुझे ही न जाने क्या हो जाता है कि बात का बतगड बना, विठिन हो उठती हैं और गभीरता ओड़ लेती हैं । लेकिन क्या सचमुच मैं इसे ओड़ती हूँ ? क्या मैं भीतर से ही ऐसी नहीं हो गई हूँ ? मैं ही क्यों, मेरे पैगो रिपति में कोई भी ऐसा हो सकता है । जैसे हानात होने, स्वभाव भी तो बँसा ही बनेगा !” तिर भुजाए, अपनी खुन्नी का बोना उमेठने, लता मन ही मन यह गुन रही थी और सामने बेंटी लीना की मम्मी चुपचाप उसकी इस भाव-परिभा को पढ़ रही थी । थोड़ी देर की खुप्पी के बाद उन्होंने लता को जैसे सोने से जगाया, “पढ़ाई कँती चल रही है बेंटी ?”

“अ... टीक ही चल रही है मम्मी । नहीं-नहीं, कुछ गान नहीं चल

रही। दरमगल ।”

“दरमगल तुम आत्राजत अपने आपे में नहीं हो, यही न ?”

“नहीं-नहीं, मेरा मनसब था ।”

“बसो, कुछ भी मनसब था तुम्हारा, छोड़ो इस बात को। जाओ, देखो तो चाय में क्या देर है ? आकर लीना की मदद कर लो और ज्यों से कर आ जाओ। आत्र तो न जाने क्यों, मुझे भी चाय की बहुत तनब लग रही है।” उन्होंने मुश्किल से सत्ता को भीतर से बाहर खींच लिया।

“ओ अच्छा, अभी लाती हूँ,” बहकर लता भी मध्यर मणि में रछोई-गर की ओर बढ़ गई। उसने स्वयं को कुछ हलका महसूस किया।

अब लीना की मम्मी सोच रही थी, ‘नया हालत कर दी है इसकी माँ ने इसकी। बेचारी खुलकर बोल भी नहीं पाती। पर इसे आत्र सोनना ही होगा। यहाँ, मेरे पास नहीं खुलेगी तो फिर घर में तो कभी नहीं खुल सकती। और अभी इस उम्र में बन्द रह जाएगी तो शायद जीवन-भर न खुल पाए। तब कैसी होगी इसकी जिन्दगी, कैसे होंगे इसके दाम्पत्य सम्बन्ध, कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ, इसकी सोच, इसकी गंभीरता देखकर लगता तो है कि मन ही मन स्वयं को तैयार कर रही है—कुछ पूछने, कुछ जानने और कुछ खुलने के लिए। पर बेचारी आदत से मजबूर हो, सहम-मिकुड चुकी है। इसके साथ बहुत मूम्बूम्बू से काम लेना होगा मुझे। पहले तो इसे हलके मूड में लाना चाहिए, अन्यथा बात बनेगी नहीं, उल्टे बिगड़ सकती है। किसी भी तरह इसे अपने काँ अपमानित अनुभव नहीं करना चाहिए। न ही लीना के सामने उसे छोटा पडना चाहिए। सभी शायद खुले और अपने भीतर शक्ति-सचय कर सके। बस यह गति-धारम ही तो देना है उसे। आगे चालन-शक्ति भी उसकी होगी और राह भी उसकी अपनी होगी। देखती हूँ, कितनी सफलता मिलती है मुझे इसके साथ। वास्तव में यह परीक्षा इसकी नहीं, मेरी होगी।’

तभी चाय आ गई और उसके साथ ही आ गई लीना की चहूँ-चहाहूँ, जो लता को और सबुचाए जा रही थी। प्यालों में चाय डालते लीना कह ही तो उठी, “मम्मी, आत्र तो लता जमकर तैयारी करके आई है। आपसे चर्चा करके जानना-सामझना चाहती है कि अभी वह जहाँ, किस तरह

उसभी है, यदि वह प्रेम नहीं है, तो क्या होता है प्रेम ? मुझसे भी पूछ रही थी । मैं तो नहीं बता पाई, अब आप ही इसे बताइए । मैं तो बस इतना जानती हूँ...”

“साकू धानती हो तुम,” मम्मी ने भाँपा और सीना को किसी तरह नियंत्रण में लाने की कोशिश करने लगी, “केवल बड़बड़ बहुत करती हो । जता तुमसे अधिक जानती है । तुम तो न किसी बात को ध्यान से सुनती हो, न गभीरता से लेती हो, जानोगी क्या साकू ! अगर लता को तुम्हारे जैसी स्वतन्त्रता मिलती, सुविधाएँ मिलनी, तब देखती, यह क्या करके दिखाती ! अभी भी तुम देखना, तुमसे आगे बढ़कर न दिखाएँ तो ! इसकी जिज्ञासा ही इसकी राह खोलेली ।”

लता को राहत मिली, प्रोत्साहन मिला, पर वानावरण हलका नहीं हुआ । तभी सीना बोल पड़ी, “तो हो जाइए शुरू । जिज्ञासा और समाधान के बीच मैं टॉप नहीं अड्डाऊँगी । मैं चली ।” और सीना यह आ, बढ़ा ।

लता हीरान-सी उसे देखती रह गई । मम्मी की झिड़की पर भी सीना की यह आनन्दी प्रतिक्रिया ! खूब ! काग, वह भी ऐसी बन पाती ! एक क्षण की चुप्पी । फिर वह स्वयं को सहेजने लगी ‘उह, जाने दो, सचमुच यह तो मान करने ही नहीं देगी ।’ उसने चठकर सीना को जाने से रोक नहीं । अपनी नजरें चठाकर मम्मी पर टिका दीं, “मम्मी, प्रेम को अघा क्यों कहा जाता है, प्रेम क्या अघा होता है ?”

“नहीं, प्रेम अघा नहीं होता, वासना अघी होती है, जिसे हाँस तभी आता है, जब पानी सर से गुजर जाता है या कोई हादसा घट जाता है ।”

“और वासनारहित प्रेम ?”

“किशोर-किशोरियों में सहज आकर्षण की बात की प्रायः इसी रंग में रबते देखा गया है । जबसर लड़के-लड़कियाँ अपनी रोमानी भावना को ‘वासनारहित प्रेम’ की संज्ञा देकर स्वयं को फुललाते रहते हैं और बूतलों के भाग्य अपनी सफाई पेश करते रहते हैं । पर मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ कि वासनारहित प्रेम का शब्द किसी एक लड़के-लड़की तक सीमित नहीं होता । उसका बायरा तो सारे संसार तक फैला हो सकता है, मनुष्यों से

सेकर पशु-वर्षियों तक। जित्त व्यक्ति का मानसिक व आध्यात्मिक विकास जित्त स्तर तक होगा, उतगका यह वायरा भी उतना ही बडा होगा। इहाँ तक विपरीतसिगी किमी एक व्यक्ति के ताव गहरे सगाव का प्रदन है, जो प्रेम वातना से एकदम मुक्त नहीं हो सकता। ऐसा प्रेम न मात्र बाधुना है, न मात्र वातना। प्रेम के उदय से सेकर योन-सम्बन्ध तक उसके विकास के कई स्तर हो सकते हैं। पर उमे वातना मे असय करके नहीं देया जा सकता। इसलिये वातनारहित प्यार की धारणा भी सही नहीं है। ये तब तक एक रोमानी धुमार कह सकने हैं जब तक कि उमे स्पष्ट-समर्थ के अनुभव का अवसर नहीं मिलता।”

“तो क्या वातना जरूरी है ?”

“एक स्तर पर, एक सीमा पर जाकर। लेकिन वातना ही प्यार है, यह कहना या मानना प्यार को सस्ता बनाना है। जो प्यार वातना की दृष्टि से शुरू होता है और योन-संशुष्टि पर समाप्त हो जाता है, वह प्यार नहीं होता। मान योन-भूख होती है।”

“भूख ?”

“हाँ, भूख। पर सेक्स की भूख और पेट की भूख समान होती है, यह धारणा भी एक बहुत भ्रामक धारणा है, जिमने समाज मे बहुत गड़बड़ियाँ और विकृतियो फैलाई हैं। इसी भ्रामक धारणा और उसके दुष्परिणामो के कारण ही अब ‘कायडवाद’ को सारे ससार मे नकारा जा रहा है। पेट की भूख को किसी साधना या उदात्त भावना से जोडकर रोका नहीं जा सकता। पर सेक्स की भूख को सहज ही एक सीमा मे रखा जा सकता है और उदात्त भावना से जोडकर व्यक्तित्व-साधना द्वारा या मन की गतियो को दूसरी ओर मोडकर उसपर पूरी बरह बाधु भी पाया जा सकता है। पेट की भूख मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है, उसके जीवित रहने की शर्त है, जबकि सेक्स की भूख उसकी आदत है और अन्य कई प्राकृतिक आवश्यकतायो मे से एक। इस अन्तर को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। मनुष्य की अनुभूति और साधना दोनों से इसकी पुष्टि होती है।”

सता वान जमाए गौर से सुन रही थी कि लीना फिर बीच में आ टपनी। अन्तिम वाक्य सुनकर उसने कहा, “लेकिन मम्मी, सेक्स को इस

कदर होवा भी क्यों बनाया जाना चाहिए ?”

“विल्कुल नहीं बनाया जाना चाहिए। लेकिन उसकी सीमाएँ तो पहचाननी ही होंगी न। कुर्माग्य से आज अधिकांश लड़के-लड़कियों ने प्यार को सेक्स के धर्म में ही लेकर उसे सस्ता बना दिया है, जिसमें एक-दूसरे की भावनाओं का आदर, एक-दूसरे के हितों का ध्यान, उनके लिए त्याग-बलिदान, परस्पर विश्वास या बफादारी अंसी जरूरी बातों का स्थान गौण हो गया है। सभी तो वह अच्छी ही सदेह, घृणा, क्रूरता जैसी बुरादियों में बदलने लगता है और उसके पर्यंकर परिणाम सामने आते हैं। विवाह के पूर्व ही नहीं, विवाह के बाद भी। अधिकांश घरों में आज दाम्पत्य-दरारी, कलह, तलाक, आत्महत्या तक की स्थितियों के लिए यह सदेह, अविश्वास ही मुख्य रूप से जिम्मेदार है, नाम फिर चाहे उसे ‘दहेज पर भगदा’, ‘रिश्तों-विचारों का टकराव’ या कुछ भी दिया जाए। परस्पर विश्वास ही न हो तो निभाव की स्थिति बन कैसे सकती है। और जबरदस्ती का निभाव तो जिन्दगी में जहर घोलेगा ही।

“इसलिए जरूरी है, प्रेम को समझवारी, जिम्मेदारी और बफादारी के साथ जोड़कर देखना। सच्चा प्यार गहराई और जिम्मेदारी या बफादारी से रहित होता भी नहीं। इसीलिए बहुत जरूरी है, उसे जल्द-बाज कच्ची भावुकता और सस्ती भासना दोनों से बचाकर अपनी सर्वोत्तम निधि के रूप में संजोकर रखना कि समय पर अपने भीतर के इस सर्वोत्तम को अपने ‘सर्वप्रिय’ को समर्पित किया जा सके। प्यार, विश्वास व

एकदम ही ।”

‘वस-वस, फिर अपनी मिस कालिका का कलकत्ता लूट का रिपोर्ट’
 सार्थी ने सीता का हाथ लिया, “तुम्हारी मिस-कालिका लूटे हुए मुझका एक
 जकरी है कि जिस कालिका से वह रिपोर्ट मही बनने, उन्नी के गे। तो
 अपनी मिस कालिका, अपनी रिपोर्ट बना चुके हो । अपने अन्त-अन्त एक
 कर भी तो तुम कामो अलग से सार्थी दान नहूँ लकरी हो ! दोस्तों के
 गने वाली कार्डियल, अपनी-अपना परम विधि-अवधि अनुसार हो जाने
 आधुनिक तोर-तरीकों को अपनाते को स्वभावगत और एक-दूसरे को एक-
 गहन प्रणामी का सम्मान । न अपने तोर-तरीके दुनए पर चलना, न तुम
 को धोसी का सजाव उदासा, न अपने मौर-जपरी हस्तोत्तर करना । रि
 देखो, बेटी निधनी है । तेरी दोस्तीची तो जीवन पर भी बननी देखो बी
 है । हमने प्रणामा भी इस प्रतिभाय का एक बड़ा भाग देह होना कि अपने
 नए पर से, मण मोमों के साथ, पति के अन्त-स्वभाव न अन्त-तोर-तरीकों
 के साथ भी अनुकूलन और निभाव का आदान बनेगी । वह नही दिविनी
 का अहं निमी के आगे भा रहा है तो निमी का हीनभाव, और रिपोर्ट
 दुनए बननी जा रही है ।” कहकर मम्मी ने सीता की आँखों से बहते
 झीका तो सीता की चक्षुषणा भी एक क्षण को समझर कुछ सोचने को बाध
 हो गई । सता का हीनभाव उभारने से उसका भी कुछ हाथ है, यह बात
 गायद उसे पहली बार भीतर तक चभोट गई थी ।

सानावरण फिर गम्भीर होने ही अब बानबीत का रथ मॉडना जरती
 हो गया था । सीता की मम्मी ने तुरन्त स्थिति संभाली, “भई सीता, पाप
 का एक दोर और हो जाए तो कैसा रहे । हाँ, मूख सग आई है, साथ में
 कुछ खाने को भी साना ।” अपने स्वभाव के अनुसार सीता ने भी जल्दी
 ही स्वयं को संभाल लिया, “अभी जाती हूँ । पर मम्मी, सब तक दूने जरा
 आप वह भी समझा देना कि ‘पहली नजर में प्यार’ की हकीकत क्या है !”
 उसने सता की ओर किरारत से देखा और मुस्कुराती हुई उठकर चली
 गई ।

सता फिर झँप गई । उसका साहस जवाब देने सता । पर मम्मी ने
 उसकी कोमल भावनाओं को सहसाया, “भई, ऐसा कहते हैं तो जरूर होता

होगा। दुनिया में ऐसे भावुक प्रेमियों की भी कमी नहीं जिनके लिए 'पहली नजर का प्यार' ही सब कुछ होता है और इसी के सहारे वे अपने जीवनसाथी की अनेक कमियों को जीवन-भर निभा ले जाते हैं। आखिर बिना एक-दूसरे को पूर्ण देखे-वरन्ते माँ-बाप द्वारा तयशुदा शादियों में भी तो ऐसा होता है कि मगनी वरया ब्याह के बाद पहली नजर पर ही नजर ठहर गई तो ठहर गई। लेकिन हकीकत यह है कि उस नजर से केवल क्षणिक आकर्षण न होकर 'प्यार के सहारे का विश्वास' हो, तभी उसके सहारे जिन्दगी कटती है। इसे शायद यूँ कहना अधिक सही होगा कि इस परस्पर सहारे से प्यार का क्रमशः विकास होता जाए, तभी जिन्दगी की बाजी जीती जा सकती है, अन्यथा देख ही रही हो, आज चारों ओर क्या हो रहा है? चार दिन हँसी-खुशी, मोज-मस्ती, फिर निभाव की जिम्मेदारी सिर पर आने ही अपने-अपने स्वार्थ और अपने-अपने अह परस्पर टकराने लगते हैं। इसीलिए आज भौतिक युग में प्रेम में इस तरह की भावुकता को अपरिपक्व समझ की अभ्यवहारिकता या बीते समय की बात माना जाने लगा है। अब तो आगा-पीछा देखकर, खूब सोच-समझकर ही इस ओर कदम बढ़ाए जाने चाहिए।"

लता फिर अपने भीतर गहरे उतरने लगी थी। लीला ने आकर उसे उबार लिया, "तो मम्मी, चाय आ गई, नाश्ता भी। अब प्लीज, आज की पह बात यही छत्म। नहीं तो लता बेचारी इतनी बड़ी 'मैटल डोज' की एकदम पचा नहीं पाएगी और पचरा जाएगी।" चाय में चीनी हिलाते हुए वह फिर चहकी, "वर मम्मी, सही माने में प्यार क्या होता है, यह बात तो पूरी तरह साफ हुई ही नहीं?"

• "तुमने मुझे ही कहाँ सारी बातें! देर तक एक जगह टिककर बैठना तुम्हारे बस की बात नहीं। फिर."

"नहीं मम्मी, मैं उधर रहकर भी सुन ही रही थी, केवल आप दोनों को 'डिस्टर्ब' नहीं करना चाहती थी—छासकर लता को। आपको इसी विषय पर लता को एक बार और समय देना होगा और बात को साफ तौर पर समझाना होगा। मैं भी साथ बैठूँगी। मेरा मन भी इसपर एकदम स्पष्ट होना चाहिए। अभी तो—।"

“यही तो मैं कहना चाह रही थी कि ‘फिर एक बार बैठो’ और बीच में ही टोक दिया। सचमुच बात पूरी तरह साफ नहीं हुई। यह भी है कि इसे पूरी तरह समझाया ही नहीं जा सकता। सबको अपने अनुभव से समय पर अपना-अपना सच हाथ लगता है। ‘मिथ्या’ कथा है और वह जिन्दगी का सहारा बने बन सकता है, अगले रविवार को मैं फिर तुम लोगों से बात कहूँगी। आधुनिक समाज में भारतीय संस्कृति व मानसिकता के अनुकूल ‘डेटिंग’ का विकल्प हो सकता है, इसपर भी।”

मम्मी की इस बात पर लीना खिल उठी। उसने लता की पीठ “देखा लता, मेरी मम्मी का तुम्हारे प्रति पक्षपात! जो बातें अम मेरे साथ भी खुलकर नहीं की जा सकीं, वे तुम्हारे साथ करने के मम्मी कितनी जल्दी तैयार हो गईं! अब बताओ, कौन सुनाकिस् मैं या तुम?”

लता भीतर से भर आई और माँ-बेटी के व्यवहार से अभिभू दोनों से विदा ले, आत्ममीरव से भरे-भरे डग भरती अपने घर की चल पड़ी—मन में अगली मीटिंग की उत्सुक-आकुल प्रतीक्षा लिए।

सहज पाने और अजित करने में फर्क है

लीना और लीना की मम्मी

“क्यों लीना, तुम्हारी बह छुईमुई-सी महेली अभी आनेवाली है न ?” लीना की मम्मी ने बाहर से आकर परस टेबल पर रकने हुए पूछा।

“कौन ? लता ? हाँ, सोलह आने आनेवाली है, आए बिना बह रह ही नहीं सकती। पर मम्मी, अब बह वैसी छुईमुई नहीं है। उस दिन भी पहले जैसी बहीं थी। मैं तो देखकर हैरान ही रही थी कि इनने प्रश्नों पर उसकी जुबान खुली कैसे ? वहाँ तो हम-उम्र साधियों में भी उसकी बोलती बन्द थी, बहाँ ”

“उसकी बोलती बन्द नहीं थी, तुमने और तुम्हारी खचिन मित्र-मण्डली ने उसकी बोलती बन्द कर रखी थी। यदि घर का खानाखरच उसे गुना हुआ नहीं मिला तो यह न उसका दोष था, न तुम लोगों के मजाक का विषय। तुम्हें चाहिए था, उसे महानुभूति-महारा देख उसका आत्म-विश्वास बढ़ाना और उसे खोलना, न कि उसे उसके हीनभाव में और दबाकर उसकी रही-रही बोलती बन्द कर देना।”

“आप भी कमाल करती हैं मम्मी ! बौई और सड़की होना तो जब से उसे भटककर अलग कर चुकी होनी। बह तो मैं थी कि उस जैसी बोर, पुराना और चिपकू महकी को फिर भी अपनाए रही। शायद यह आपकी ही हुई शिक्षा-मस्कारिता का ही फल था कि उसे लेकर अपने दोस्तों के बीच हमी का पात्र बनने हुए भी मुझे उसके साथ महानुभूति बननी पड़ी। नहीं तो बह यही आप तक कैसे पहुँचती ?” लीना ने मम्मी की आँखों में - सीधे झाँका।

“ठीक है पर तुमने उसके लिए यह किया बह बिना, तुम्हारी इस

.....बदप्पन की भावना कतई बुरी भावना नहीं। उसे अपने तई रत्नें तो वह व्यक्ति को भीतर से बाहर ठेकती है, नीचे से ऊपर उठाती है। पर उसे दूसरों पर बोपने का प्रयत्न करें या उसके प्रदर्शन पर घुसू में अकुस न नगार्ए तो आगे चलकर वह व्यक्तिस्व-हानि का कारण बन सकती है। कम मेरा आनय इतना ही या—समझ रही हों न।”

“हां मम्मी, समझ रही हूं। कोशिश करूंगी कि आपको इस बारे में आगे शिक्षायत का मौका न दूं। पर मेरी प्यारी मम्मी,” गले में बाड़ें डालते हुए, “यह बदप्पन की भावना भी क्या आपकी ही दी हुई नहीं है? आपको मुझपर इतना बंधन तो रखना ही चाहिए कि लगे, आपको मेरी फिक्र है और मैं आपकी निगरानी में सुरक्षित हूं। आत्म-अनुशासन ही काफी नहीं है, आपका अनुशासन भी चाहिए।” एक माइ-भरी टेढ़ी शिक्षायनी नजर।

“हां, तुम ठीक कहती हो। इस किशोर उष में आत्म-अनुशासन साधना आसान नहीं होता। मां-बाप का अनुशासन, उनकी निगरानी भी चाहिए। पर तुम क्या समझती हो, तुम मेरी निगाह की परिधि में बाहर हो? नहीं, मेरी निगाह ही नहीं, सतर्क निगाह है तुम पर; तुम्हारे चारों ओर। ऐसे ही थोड़े न इस तरह पूरे विश्वास के साथ तुम्हें दोस्तों के साथ चाहूँ भेज देती हूँ। इतनी समझदार ब्रिटिया हो लो मां को क्या फिक्र।
.....पर मुझे फिक्र होती है, तभी न तुम्हारी बाहर की सभी गतिविधियों की भी सवर रखती हूँ।”

“सच! वह कैसे?” सीना किसकी।

“मम्मी ने साइ से सीना के गाल पर हल्की चपत लगाई, “सच तुम्हें क्यों बताऊँ? पर दीपक को क्या मैं जानती नहीं? क्या वह भी मम्मीसे भिन्नता नहीं या इसी तरह खुलकर बात नहीं करता? मुझे मालूम है, जब कभी तुम कोई निर्णय लोगे, मुझसे छिपा नहीं रहेगा। फिर ?”

“ओ यह बात है! आप मेरी जासूसी भी करती हैं? नहीं मम्मी, आपको जासूसी करने की कोई जरूरत नहीं। मेरे लिए यह जानकारी ही काफी संतोषप्रद है कि आपको मेरी इतनी फिक्र है। आप निश्चित रहें, मैं आपसे कुछे बिना ऐसा कोई कदम नहीं उठाऊंगी जिससे आपको बुरा लगे या शर्मिंदा होना पड़े। दीपक मेरे साथ है तो मुझे दूसरे लडकों से भी कोई

भय नहीं। बल्कि 'अदरार! विद' इत्य गोरी के ही। फिर के ही को ही विवदल गत आई तो आरम्भो अरर बगारों की। आरंभ प्रकृतो का सुन्दे और कोन देगा? गमय पर पूरा मरणा भी विवेक, देस दुर्गे विनाश है।"

"पर गता को मरणा मिया हुआ है, सुन्दे नहीं, यह बात सुन्दे विनाश में आई कैसे?"

"कभी-कभी, जब किन्हीं मोरुदे या बेटुदे लरको से विवदना पाए। तय विनाश में ऐसी बार उदनी हो है कि हमने तो के मरविनी हो उदने में है, जिन्हे बघन तो है पर उनके साथ उन्हें पूरी सुरक्षा भी निनी है। क्या आज के मातावरण में कभी-कभी ऐसी संभव स्वाभाविक नहीं?"

'बिल्कुल स्वाभाविक है। पर इसे प्रतिक्रिया भी तो कह सकते हैं जिसे जैसा माहौल अपने आन-यात मिला हुआ है, उगके प्रति प्रतिक्रिया सता पर और मूम पर यह बात समान रूप से लागू होती है। भते ही दोन की प्रतिक्रिया भिन्न हो। हर निक्के के दो पहलू होते हैं। चूँकि निक्के का एक पहलू ही ज्यादा चलता रहा है अभी तक हमारे समाज में, इयति 'बघन के साथ सुरक्षा' या 'सुरक्षा के लिए बघन' को बान ही लोगों के भली लगती है। बकन के साथ चलने के लिए हमारी सामाजिक दृष्टि उदने इतनी नहीं बदती है कि स्वतन्त्रचेता लड़कियों को समाज की प्रथम दृष्टि का प्रोत्साहन मिले, इसलिए उनके सामने पग-पग पर कठिनाई है। अकसर उन्हें सस्ता या सहज उपलब्ध समझ लिया जाता है।

"इसका कारण आज के समाज का मूर्खहीन भोगवादी माहौल भी और इसकी जिम्मेदार स्वयं के लड़कियाँ-स्त्रियाँ भी हैं, जिन्होंने आजाद का दुष्ययोग किया है और स्वयं को छोटी-मोटी सुविधाओं के लिए सल या भोग्या बना लिया है। पर सभी इस माहौल से डरकर कायत घरों में बंद हो जाएँ तो फिर शिक्षण-प्रशिक्षण, छात्रादी-प्रगति के क्या मायने हैं? इसलिए डरने की नहीं, स्वयं को संभालकर, साधकर चलाने, छाते बढाने की ही जरूरत है। ज्यादा सावाद में लड़कियाँ स्वतन्त्रचेता सस्कार लेकर छागे छाएंगी और आजादी की जिम्मेदारी के साथ ओढ़कर देखेंगी, तभी त यह माहौल बदलेगा। जब तक यह बदलाव नहीं आता, तुम्हारे

जैसी लड़कियों को अतिरिक्त समझदारी, अतिरिक्त साहस से आगे बाना होगा ताकि दूसरी लड़कियों के लिए राह खुले।”

पातावरण जरा गम्भीर हो चला था, तभी सामने से लता को आता देव लीना फिर चहुक उठी, “सो, वह आ गई सता, पहले तो इसी की राह खोलो। -पर मम्मी, पहले पाप हो जाए जरा, फिर आज प्रश्नों की पहल मेरे हाथ रहेगी। अभी आज तो आपने मुझे इतना म्कमोर दिया है कि मैं भी अब जरा गम्भीर होना चाहती हूँ कि स्वतन्त्र निर्णय लेते समय मुझे अपने आपसे उलझना न पड़े।”

“हाँ, जरूर-जरूर। जो जानना चाहती हो जानो, समझो, अपने भीतर स्पष्ट होओ, पर बहुत गम्भीर होने की जरूरत नहीं। चलो, अब दोनों मिनकर पहले पाप पिलाओ। फिर इलमीनान से अगली बात।”

भीतर का सर्वोत्तम और समर्पण

सीना, लता और मम्मी

"हाँ तो मम्मी, उस दिन आप लता को ऐसा कुछ बता रही थीं 'अपने भीतर के सर्वोत्तम और ...' मैं ठीक से सुन नहीं पाई। शायद आपने ठीक से समझाया भी नहीं। आज वही से शुरू करो न प्लीज। चाय की चुस्किवों के बीच आज सीना ने सचमुच 'पहल' अपने हाथ में ली थी।

लता उसका मुँह देखती रह गई, 'सीना भी इस तरह बैठकर बात को गम्भीरता से ले सकती है।' चलो अच्छा है। आज शायद अंतिम खुलकर चर्चा हो सकेगी। मुझे तो कोई बात ठीक से समझ में नहीं आती तो मैं मम्मी को टोककर पूछने का साहस ही नहीं जुटा पाती। सोबर रह जाती हूँ, 'फिर कभी पूछ लूँगी।' तो वही ठीक रहेगा। सीना जर खुलकर पूछेगी तो मुझे भी इसका सामना मिल जाएगा और ...।' तर्ष मम्मी की आवाज सुनकर वह चौकन्नी हो आई।

मम्मी कह रही थी, "हाँ सीना, तुमने आज 'सर्वोत्तम' और समर्पण का प्रश्न उठाया है न? शायद तुम दोनों ही इसे समझना चाह रही हो। पर मुझे ऐसा नहीं लगता कि इनमें ऐसी कोई रहस्यमयी बात या अनबुझ पहेली है, जो तुम्हारी समझ से बाहर हो। फिर भी इस बात को गम्भीरता से लीजो तो मैं जरूर बताना-समझाना चाहूँगी।

"तो सुनो, पहली बात है, प्यार को प्यार के सही अर्थ में जानना। प्यार का अर्थ है, मन की सारी कीमल भावनाओं, अनुभूतियों और सदृशताओं को समेटकर, अपनी-अपनी में समेटकर, अपने भीतर के इस 'सर्वोत्तम' को अपने सर्वाधिक 'प्रिय' की समर्पित करना। प्रिय, जो अपनी सारी

स्त्रियों और कमियों के साथ स्वीकार्य हो। अनुभूतियों को अपनत्व में लपेटने का आशय यही है कि जहाँ अपनेपन की भावना होती है वहाँ किसी 'अपने' की स्त्रियाँ ही स्वीकार्य नहीं होती, उनके साथ उसकी कमियों को भी अपना लिया जाता है। यह अलग बात है कि अपनाते के बाद कोई उनमें अपेक्षित सुधार ला सके या नहीं, पर सुधार की एक अपनत्व-सरी कोशिश अवश्य उनमें जुड़ जाती है। इसलिए एकाएक सुधार सम्भव होने पर भी सुधार की संभावना बढ़ जाती है और धीरे-धीरे सफलता की राह भी खुलती चलती है।

"लेकिन यह बात की बात है। कितनी भी सदिच्छा-सद्भावना हो, शुरु में ही उसके साथ 'अपेक्षा' और 'संभावना' जैसे शब्द जोड़कर चलना ठीक नहीं। बाद में अपेक्षा पूरी न होने या संभावना के घटित न होने पर इससे निराशा हाथ लग सकती है। और भांगर के 'सर्वोत्तम' के समर्पण के साथ कमियों या उनमें उत्पन्न निराशा का कोई भेल नहीं बँटाया जा सकता। अपनत्व के अपने अलग सुखद आयाम होते हैं। इसलिए फिर कहती हूँ, 'अपनत्व' और 'सर्वोत्तम के समर्पण' का कोई विफल नहीं हो सकता।

"यह भीतर का 'सर्वोत्तम' क्या है? अपने किसी 'सर्वप्रिय' के प्रति मन की सभी कोमल भावनाओं, प्रेमल अनुभूतियों और सदिच्छाओं का योग ही तो! सच्चा और सम्पूर्ण समर्पण इस समन्वित भावना से ही हो सकता है— फिर वह प्रिय प्रेमी के प्रति ही, पति के प्रति ही या भगवान के प्रति। मनुष्य से उठकर प्रकृति के हर रंग, भगवान की सृष्टि के हर जीव-जन्तु, पशु-पक्षी में लेकर स्वयं भगवान तक पहुँचने वाला यह 'प्रेम' बहुत विराट् है, बहुत विशाल। इसे एक सीमिन परिधि या परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता। पर इस विस्तार तक ऊँचे उठने के लिए मन्वी साधना चाहिए। इसलिए यहाँ अपने सर्वप्रिय मनुष्य की बात ही लें।

"तो यह 'सर्वोत्तम' न तो हर किसी को लुटाया जा सकता है, न इसके अस्तित्व में आने से पहले के कच्चे माल को अपरिपक्व रूप में अपने प्रिय को दिया जा सकता है। दिया भी जाए तो उससे आत्म-सन्तोष नहीं मिलेगा। उसका सु-फल हाथ नहीं लगेगा। अतः उपयुक्त समय आने तक

एप से तैयार रहना चाहिए । आखिर गलती की है तो उसके परिणाम से पलायन क्यों ? लेकिन वैसी स्थिति बन आए तो उसके निराकरण का उपाय भी यही होना चाहिए कि आने बँसी गलती या फिसलन न हो और दृढ़ चरित्र व गहरा आत्मविश्वास लेकर सटकी अपने पैरों पर खड़ी हो । जहाँ ऐसा होता है, वहाँ दण्ड की यह अवधि भी प्रायः अल्प व अस्थायी ही होती है और समय स्वयं इस दरार को पाटकर दोनों को वापस मिला देता है, जबकि आप्रोच या बदले की भावना से आने और गलत कदम उठते जाते हैं और फिर समाधान के लिए कोई राह नहीं बचती ।

“पहले से ही चरित्र की दृढ़ता पास हो तो ऐसी नौबत ही क्यों आयी भला ?

“मुझे सुशी है कि तुम भ्रमकर उसी बात पर आ गयी हो, जिसके लिए अपेक्षित मानसिक तैयारी की बात पहले कही गयी है । मानसिक परिपक्वता और सस्कारिता में प्रायः अनामंजस्य नहीं होता । परिपक्व समझ का स्थिति शक्तिर सोच-समझकर ही कदम उठाता है । इसलिए सकल्प की दृढ़ता व मन्थरिचता की बात उनके साथ अनायास ही आ जुड़ती है । फिर भी यह जरूरी नहीं कि अपरिपक्व समझ में उठा कोई गलत कदम आगे समझ आने पर सही दिशा में ले जाया नहीं जा सकता । आखिर इन्मान भूलो से ही तो खीसता है ! मन की गति पर हमेशा न तो कड़े बन्धन लगाए जा सकते हैं, न वर्तमान माहौल में ऐसी कोई सीमा-रेखाएँ ही खींची जा सकती हैं । पर एक बात तुम लोगों को अच्छी तरह से गमम लेनी है कि इन सब स्थितियों को स्वीकारने हुए भी, यह जरूरी नहीं कि भूल करके ही मीखा जाए । अगर भीतरी सस्कारिता से या किसी बाहरी निर्देशन से मही दिशा मिल रही हो तो मासमझ उम्र में भी कदमों को भटकने से बचाया जा सकता है । हो सकता है, इस रास्ते चलने में रोमांच या ‘धिल’ (यदि उसकी चाहना है !) के अनुभव से धंचित रहना पड़े, लेकिन आत्मसंतोष और आत्मगौरव इससे बड़ी चीज है । जब यह विश्वीरियों के सोचने की बात है कि उन्हें बड़ी चीज हासिल करनी है, या छोटी ?”

अभी तक की इस सारी बातचीत के दौरान सता मनमुगध धोना-धो

संस्कारिता को भटककर अलग कर देने ? वेशभूषा, रहन-सहन, शिष्टाचार में वे कितने ही आधुनिक बनने की कोशिश करें, मन से वे इस रूप में आधुनिक नहीं हो पाये हैं। यो भी आधुनिकता का अर्थ पश्चिमीकरण या अपनी जड़ों से, अपने संस्कारों से विलगाव नहीं। यह बात बहुत गहरे तक समझने की जरूरत है, क्योंकि हमारे यहाँ भी दाम्पत्यिक दरार और पारिवारिक विपटन की बढ़ती संख्या के पीछे यहीं मुख्य कारण है।”

“तो क्या किसी लड़की से ऐसी भूल हो जाए तो वह इसे अपने पति से छिपा ले ? उसे बताकर उसका विश्वास प्राप्त न करे ?”

“पहली बात तो यह कि जासपीग रोज के दुष्परिणाम देखते हुए इस भूल से बचें। फिर भी मान लो, किसी असावधानी या क्षणिक दुर्बलतावादा ऐसा हो जाए तो भी बताना जरूरी नहीं। यह भय या दुश्चिन्ता मन से निवारित करना जरूरी है कि ‘हाय, उसे पता चल जाएगा, तो क्या होगा ?’ कई बार तो इस दुश्चिन्ता के मनोरोग से ही बनते सम्बन्ध बिगड़ते दस्त गए हैं। ‘भय का भूत’ ऐसा भयानक भी हो सकता है, इसकी शिकार लड़कियाँ प्रायः इन्ते समय पर नहीं पहचान पाती और जब पहचान पाती है, तब तक सन्देह-अविश्वास की कटार उनकी गर्दन पर चल चुकी होती है। हाँ, यही ‘कहो बात खुल न जाए ?’ वाला भय का भूत। यो पता चल जाने का अपने आपमें, ऐसा कोई कारण या आधार नहीं है। तो सन्देह न होने पर भी बेवजह सन्देह की बीज में लाना और पति का उदारता पर बहुत बड़ा प्रयोग करना जान-बूझकर विपत्तियों को निमंत्रण देना है। इसके बजाए, ‘बीबी साहिबिमार के, आगे दाक-साफ मन के साथ दाम्पत्य जीवन की सई मूहआव करना ही ठीक होगा ?”

“लेकिन मान लो, पति को पता चल जाता है तो ?”

“तो छिपाना भी ठीक नहीं। अपनी मजबूरी बताना या अपनी मानसिक, जो भी मर्यादा है, पति से क्षमा माँग लेनी चाहिए। मरचे मन से छिपा गया पड़काता और आगे बकादारी का संकल्प हो तो अक्सर क्षमा भी मिल जाएगी, मन की मानि भी। क्षमा न मिले तो भी मर्यादा का मन्व्य अपने आपमें बस नहीं होगा। पिछली गलती के लिए और आगे इस मन्व्य की प्राप्ति के लिए जो दण्ड भेजना पड़े, उसके लिए भी मानसिक

रूप से तैयार रहना चाहिए । आखिर गलती की है तो उसके परिणाम से पलायन क्यों ? लेकिन वैसी स्थिति बन जाए तो उसके निराकरण का उपाय भी यही होना चाहिए कि आगे वैसी गलती या फिसलन न हो और दृढ़ चरित्र ब गहरा आत्मविश्वास लेकर लड़की अपने पैरों पर खड़ी हो । जहाँ ऐसा होता है, वहाँ दण्ड की यह अवधि भी प्रायः अलग ब अस्थायी ही होती है और समय स्वयं दम दरार को पाटकर दोनों को वापस मिला देता है, जबकि आक्रोश या थदने की भावना से आगे और गलत कदम उठने जाते हैं और फिर समाधान के लिए कोई राह नहीं बचती ।

“पहले से ही चरित्र की दृढ़ता पाम हो तो ऐसी नीबत ही क्यों आगयी मला ?

“मुझे खुशी है कि तुम धूमकर उसी बात पर आ गयी हो, जिनके लिए अपेक्षित मानसिक तैयारी की बात पहले कही गयी है । मानसिक परिपक्वता और सत्चरित्रता में प्रायः समानअर्थ नहीं होता । परिपक्व समझ का व्यक्ति घबसत सोच-समझकर ही कदम उठाता है । इसलिए सकल्प की दृढ़ता ब मच्चरित्रता की बात उनके माथ अनायास ही आ जुड़ती है । फिर भी यह जरूरी नहीं कि अपरिपक्व समझ में उठा कोई कदम कदम आगे समझ आने पर सही दिशा में ले जाया नहीं जा सकता । आखिर इन्मान मूलों से ही तो सीखता है । मन की गति पर हमेशा न तो बड़े बन्धन लगाए जा सकते हैं, न वर्तमान माहौल में ऐसी कोई सीमा-रेखाएँ ही खींची जा सकती हैं । पर एक बात सुम लोगो को अच्छी तरह में समझ लेनी है कि इन सब स्थितियों को स्वीकारते हुए भी, यह जरूरी नहीं कि भूल करके ही मीखा जाए । अगर भीतरी सत्कारिता से या किसी बाहरी निर्देशन से नहीं दिशा मिल रही हो तो नासमझ उम्र में भी कदमो को भटकने से बचाया जा सकता है । हो सकता है, इस रास्ते चलने में रोमांच या ‘धिल’ (यदि उसकी चाहना है !) के अनुभव से बचित रहना पड़े, लेकिन धाम्यसतोष और धात्मगौरव इमते बड़ी चीज है । जब यह क्रिश्चियनों के सोचने की बात है कि उन्हें बड़ी चीज हासिल करनी है, या छोटी ?”

अभी तक भी इन सारी बातचीत के दौरान सता मत्रमुख्य श्रोता-श्री

बारे में पूरी आश्वस्ति हो, तब भी लड़कियों को दम और सावधान रहना होगा। लेकिन यहाँ शुरू में हमने 'सर्वोत्तम के समर्पण' की बात उठायी थी, तो इस बात के साथ सतर्कता या सावधानी का भी कोई तालमेल नहीं बैठता। किन्हीं प्राश्वस्त स्थितियों में सतर्कता जरूरी न समझी जाए, तो भी अपने सर्वाधिक प्रिय या प्राथमिक व्यक्ति को अपने भीतर के, संपिंडित नहीं, सम्पूर्ण का समर्पण करना है, यह बात सबसे अधिक बजनी और अपने आपमें बहुत ऊँची है। किसी तर्क से इसका संपदन नहीं किया जा सकता।"

ऐसा कहते हुए मम्मी ने आँख उठाकर लता को देखा तो पाया कि उसकी आँखों में एक सकल्प, एक आश्वस्ति की चमक के साथ कुछ तरल-सा भी तिर आया है। उन्होंने लता को इस समय और ज्यादा भिन्नोडना ठीक नहीं समझा और कुछ जरूरी काम याद आ जाने की बात कहकर उठ खड़ी हुई, 'बस, आज और नहीं।"

पर सीमा अभी आगे बहने के मूड में थी, "मम्मी, आप तो आज 'डेटिंग' पर भी चर्चा करने वाली थी न? वह बात तो अभी बीच में आई ही नहीं, छिपाव-दुराव को आप पहले ले आईं। अभी तो आपको यह बताना है कि जिन्हें घर से ऐसे मैसजोन की इजाजत नहीं है, जैसे लता को, वे क्या करें? 'डेटिंग' उनके लिए क्या मायने रखती है? और छिपाव-दुराव, भूट और भय से वे कैसे छुटकारा पा सकती हैं?"

जाने-जाते मम्मी ठिठकीं, फिर बोलीं, "करेंगे मई, इसपर भी आगे कभी चर्चा करेंगे। अभी तो बात को यही रहने दो। आज की खुराक तुम लोगों के लिए पहले ही काफी गरिष्ठ परोस दी गई है। इसे धीरे-धीरे ही पचा पाओगी, तुम। बीच-बीच में सोचने के लिए भी कुछ समय लेना चाहिए। इसलिए जो गुनो, पहले उसे गुनो फिर आगे बढो। इस बीच जो कुछ प्रश्न तुम दोनों के मन में उठें, अपने रबिदार को उन्हें भी लेकर आना। एकवारगी मैं तुम्हारे सभी प्रश्नों के समाधान देना चाहूँगी। फिर आगे मम्मी को हर बार हर बात के बीच मन घड़ीटना। इस तरह भी पर-निर्भरता बढती है और स्वयं सोचकर निर्णय लेने की क्षमता बाधित होती है। मैं समझती हूँ, अगली मीटिंग के बाद तुम्हें हर प्रश्न के समाधान के

लिए मेरे पास नहीं आना पड़ेगा। मैं भी तुम्हारे स्वतंत्र विवाह के बीच में नहीं आना चाहूँगी। हाँ, जब कभी कोई कठिनाई सामने उपस्थित हो, तुम निःसंकोच मेरे पास आकर मुझमें सलाह ले सकती हो।”

लीना ने कुछ रूझते, कुछ साह-भरे स्वर में शिकायत की, “मेरी समस्या कहाँ थी मम्मी? मैं तो अपने निर्णय अब स्वयं लेती ही हूँ। यह तो सलाह की मदद के लिए आपने ही कहा था, ‘उसे मुझमें पिलाओ।’ फिर आप से बार्ने भी बीच में ले घाई, जो अभी उसके सामने नहीं थीं। मेरे सामने भी अभी तक नहीं आई थी, पर आ सकती थीं। समझता है, यही भाँपकर आपने सलाह के साथ आज मुझे भी अपने पास बँटने दिया, धरना।”

‘धरना क्या? तुम किसी बात को कभी गभीरता से लेती भी हो? अक्सर बात को रूँ ही टालने, उड़ाने की जो तुम्हारी आदत है, उसे क्या मैं जानती नहीं? सलाह बीच में न आती वह तुम्हें जोर देकर पास न बँडानी तो अब भी तुम कहाँ बँटने वाली थी?’ इनका अनिश्चित आत्मविश्वास भी टूट नहीं होता, लीना।

“तबमुच इतना ओवर कन्सीडिंग’ हुआ मुझमें तो इस तरह सलाह और आने के बीच की बाधाओं को मैं आज रूँ भगती तरह नहीं छोड़ लेती। तब मम्मी, मुझे भी यह सब समझने-सीगने को कहकर है, इमीलिए तो बात को आगे बढ़ाना चाह रही थी और आज समझती हूँ कि मैं तर मुझ ज्ञानो-समझती हूँ और आने वाली स्थिति से आने भाग निकल सकती हूँ। अब, जबकि आपने बात को अभी दायर्य तक बढ़ा ही दिया है तो मैं भी वहीं तक पहुँचने के लिये ज़ेब-नीच समझना चाहती हूँ, गना हो नहीं।”

• ६। अब कहाँ कि सपना तबका। समझने-गाने की ज़रूरत तो आगे पूरी (अर्थात्) कल पढ़ाए पर भी रहेगी। मैं केवल इनका कहती हूँ कि पास तुम, अर्थात् लीना और फिर अपनी सज्जित मुँह लुना। हाँ, तुम्हारी इच्छा-सुझाव अपनी सीमा के इमी बात को परधान बनाना है। अब तो कहें? और लीना के साथ कहना है, लीना की कीड परधान हुए कहकर कभी नहीं।

मित्रता अधिक बहुमूल्य

लता, लता की माँ और नरेश

छुट्टी वाला दिन था ही। लता घर सौट रही थी कि घर के समीप सामने से आता नरेश लता के रुबन हो आया, “कहिए, लता जी, कहीं से आ रही है?”

“अ-हं,” लता जरा-सी अचकचाई। पर आज उसने कतराकर निकल जाने की कोशिश नहीं की। थोड़ी हँरान जल्द हुई कि यह चुप्पा-सा, दब्यु-सा लटका इस तरह गनी में लड़े होकर बात करने की हिम्मत कैसे जुटा पाया? फिर सूश हुई कि चकी बात शुरू तो हुई! और उत्तर देने के लिए उसने धानन-धानन में स्वयं को सहेज लिया, “जरा लीना के घर तक गई थी।”

“क्या आपकी माताजी आपको लीना के घर जाने देती हैं? आपका उसमें मेसऑल तो उन्हें पसन्द नहीं है न?”

लता फिर हँरान, “तुम्हें कैसे मालूम?”

“मे क्या जानता नहीं?”

“और क्या जानते हो?”

“यही कि उन्हें मेरा भी आपके घर आना पसन्द नहीं न मुमसे बात करता ही।”

“तभी इस तरह राह रोककर बात कर रहे हो?”

“राह रोककर नहीं, राह धलने लड़े होकर।”

“यही सही, पर मुम तो . . . ?”

“हाँ, अभी तक बात करने से भिम्कता रहा—यही न?”

“भिम्कते रहे कि डरते रहे?”

“यही समझ लें।”

“पर किससे डरते रहे ? मेरे घर वाली से ? अपने घर वाली से ? या अपने आपसे ?”

“अब आप जो भी समझ लें। मैं तो जो ।”

“यह माप-आप और जी-जी क्या लगा रखी है ?”

“तो क्या कहूँ ?”

“‘तुम’ नहीं कह सकते ? क्या मित्रता ऐसे होती है, इतनी औपचारिकता के बीच ?”

“मित्रता ?”

“ही मित्रता।”

“वह कम हुई ?”

“नहीं हुई तो हो सकती है। इसके लिए कोई मुहूर्त निकलवाना होगा क्या ? समझ लो आज से ही शुरू हो गई।”

“अ-ह ” अब अचकचाने की बारी नरेश की थी, “लेकिन ?”
उमें पसीना छूटने लगा।

“लेकिन क्या ? पूँ पबराने की जरूरत नहीं। हम कोई चीज़ नहीं करने जा रहे। अच्छा, ‘बाई’। हम फिर मिलेंगे।” और हाथ हिलानी सता यह जा, यह जा। नरेश ठगा-सा उसे देखता रह गया।

सता स्वयं पर भी कम हँसान न थी। पर सीना और उसकी मम्मी का जादू जो उसके सर चढ़कर बोलने लगा था।

उत्साह से उड़ने बंदमों और गुनगुनाने हाँठों के साथ उठाने पर में पूँ प्रवेश किया जैसे साम्नी घुटन के बाद ताजी हवा का एक आँका उसके साथ-साथ पर में घुम आया हो।

सामने ही माँ बेंटी मम्मी काट रही थी। उमें देखकर मन ही मन मुस्कराई, फिर बोल उठी “का बाप ? ? घात्र बड़ी मृग नजर आ रही है बेटी बेटी ?”

“ओह-बाई” लगा ने माँ के मनबन्धियाँ बाप की, “तुम जानती तो हो कि मैं यह सब करने वाली ‘बो’, भोड़, गुनगुन लगाने वाली हूँ। मन-मो-मन
— पर यह सब करने वाली किमानी हुई और :”

“जानती हूँ। इसलिए खुश हूँ कि वो का कहै हैं—‘देर आयद दुहरत आयद’—बनो तुम ठीक तो हुईं। मच, मुझे तो तमारी घणी चिन्ता रहवै थी कि ”

“कि यह नकचकी लड़की सगुराल में कैसे निभाएगी—यही न ?”

“तुमने ठीक समझा। अब अगर तुमने भाई-बहनो को खिझाना छोड़ दिया है। उनको सार-सँभाल और घर के कामकाज में दिन लगाने लगी हो और माँ की हर बात की काट नहीं करती हो तो मुझे वाहे की चिन्ता।”

“पर माँ, अब तुम्हें भी मेरा साथ देना होगा।”

“कइसे ?”

“मुझ्गर लगाए बघन कीले करके।”

“अरी कौन से अइसे बघन हैं तुझ्गर निगोडी ? लोना और उसकी कंसनेवल माँ से मिलने के लिए अब कब मना करती हूँ तुम्हें ? जब से मुझे पता चला और जकीन हो गया कि तुम्हें सही मार्ग पर लाने में उनसे ही मेरी मदद करी है, तो मैं का मूरख हूँ जो अब भी तुम्हें उधर जाने से रोहूँगी ?”

“पर बात इतनी ही तो नहीं है।”

“तो क्या उम आबारा छोरे नरेग को भी घर आण-जाण दूँ ? ना, जे नहीं होने का।”

“देखो माँ, पहली बात तो यह कि बिना पाने-समझे किसी को आबारा कह देना उचित नहीं। दूसरी बात यह कि यह आबारा होगा तो क्या तुम्हारी बेटी उसमें मेलजोल रखना पसन्द करेगी ? क्या तुम्हें अपनी बेटी पर यकीन नहीं ? तीसरी बात यह कि किसी से मिलने-जुलने का मतलब क्या प्रेम करना ही होता है। अच्छे पड़ोसी के नाते क्या हम नहीं मिल सकते ? रही दोस्ती की बात, तो वह भी मैं सोच-समझकर, देख-परखकर ही तो आगे बढ़ाऊँगी। क्या मैं इतनी कम-अबल हूँ कि इतना भी नहीं जानती या अपना आवा-पिछा नहीं सोच सकती।”

“हाँ भाई, अब तो तुम बौत समझदार हो गई हो न। पर यह मत भूलो कि जे अइसी रपटीनी इतर है, जिस पर चलते अपने को सीस मार

गा' बहने वाले भी किम्वद जाते हैं। बड़े-बड़े सम्भार भी धोखा सा न
है।"

"तुम ठीक कहती हो माँ। मैं नासमझ न होंऊँ, अनुभवहीन ना
हो। फिर भी मुझपर भरोसा रखो माँ। अश्वत्थ तो ऐसा कुछ होगा
नहीं। होगा, या कभी इन बारे में मेरे सामने कोई कठिनाई आई तो
तुम्हें अँधेरे में नहीं रखूँगी। तुम्हें सब कुछ बताकर तुम्हारी सहाह में ही
चलूँगी। क्या मुझे माँ-बाबू के अनुभवों परामर्श और संरक्षण की जरूरत
नहीं?"

सता की माँ के चेहरे पर आत्मतोष की एक झलक उभरी। पर उसे
दबाकर उन्होंने फिर एक जिम्मेदार गम्भीरता ओढ़ ली "ठीक है। पर
मैं तुम्हारी बात से सन्तुष्ट हो भी जाऊँ कि तुम सही मार्ग चुनोगी और
ठीक-ठीक बसोगी, का अपने बाबूजी की भी अइसे ही जकीन दिला
सकोगी। तुम्हें छूट लेते देखकर का वह मुझपर शोक नहीं धरेंगे। फिर
जरा भी कुछ ऊँच-नीच भयो या बइसे ही किसी की कोई शक परिगयो तो
का तुम कोई की जुवान पकड़ सोगी। लोग बात का बतगड बनाते हैं
और सामखा बइतामी हो आवें हैं। जानत हो, एक बार काह की सडकी
पर उँगली उठ जाए तो का होत है?"

"जानती हूँ माँ, उसका सारा भविष्य धूमिल हो सकता है। पर ऐसी
जीवन हो क्यों आवेगी भला! हाँ, बाबूजी की बात तुम मुझपर छोड़
दो। वह तो मुझपर तुमसे ज्यादा विश्वास करते हैं माँ, वह तो तुम
ही -।"

"हाँ, मैं ही अधिक टोकाटाकी करती हूँ और मैं ही उनसे तुम्हारी
सिकायत करती रही हूँ—जेही न। पर जानत ही, क्यों? अब मरद लोग
तो जादा समय घर में बाहर रहते हैं। जरा सी भी कष्ट बात होई गई तो
जवाबदेही भी माँ पर, जामत भी वही की। तब माँ को ही आवे बड़ि के
अपनी जवान होती छोरी की जिम्मेदारी लेनी पड़े कि नहीं? सरकिन
काँ बुरी लपत है। पर जे बधन का उनके ही भले के नाहीं!"

"जकर उनके ही भले के लिए हैं, अगर एक भीमा तक हो।"

"पर तुम का जानो जे...का वही... सीमा-सीमा? पता है, जगते-

उठते पैर के धारों तरफ लोहे की जाली वाली गोल बाड़ क्यों लगावं हैं ? और पैर के ऊँचे होने पर, उसके सिर उठाकर मजबूती से खड़े हो जाने पर बाड़ क्यों हटा देवे हैं ?”

“समझ गईं माँ, तुम्हारा मतलब खूब समझ गई हूँ। अब तो यह भी समझ रही हूँ कि मैंने आज तक तुम्हें समझने में गलती की। तुम्हारी शिक्षा अपने घर के परिवेश का ध्यान किए बिना हर बात में लीना की मर्मा' में तुम्हारी तुलना करके तुम्हें छोटा बनाती रही और स्वयं भी मन ही मन घुटली-कलपती रही। अब ठीक से जान पाई हूँ तो लगता है, तुम भी किमो से कम नहीं।” फिर माँ के गले में बाँधे डालकर झूलते हुए, “मेरी माँधी-सादी अच्छी माँ! हाय, कितनी भोली दिखकर भी तुम कितनी छुपाँ रस्तम निकलो माँ, सचमुच शूपी रस्तम !”

“बस-बस, अब ज्यादा मक्खन न लगाओ। उठो अऊर जाकर दिवरा काम-काज निबटा लो। फिर मुन्ना, गुड्डी को भी पढ़ाना है। बहुत होई गई दिन-भर छुट्टी की मटरगवती।”

“मैं क्या मटरगवती करने गई थी !”

“न सही। पर खानो बानो से पेट नहीं भरता। कुछ करके भी दिखाना चाहिए।”

“अऊर दिखाऊँगी। तुम देखना माँ, अब मैं क्या-बधा करके दिखानी हूँ। बस तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए।”

“अदमा का 'काहँ का खजाना' लग गया तुम्हारे हाथ, जो पहले नहीं था।”

“'काहँ का खजाना' क्या होता है, यह तो मैं नहीं जानती। पर यह जान गई हूँ कि मिथवा उससे अधिक मूल्यवान चीज है—बहुमूल्य नहीं अमूल्य।” धीरे से यह वाक्य उछालती लजा उठकर खली गई और चुन्नी कमर में खोम रूँ काम निबटाने लगी, जैसे उसके पैरों में पहिए लग गए हों, बाँहों में मशीनी पुरजे फिट हो गए हों और मस्तिष्क में उन्हें संचालित करने के बटन।

बिताकी पहल ?

सता और नरेग

"क्या बेगकर भा रहे हा ?"

हाथ में बग्गा घुमाने, मारपी में झुलने, हवा में उड़ने से तेज आते नरेग के कानों में जैसे कोई पत्ती बज उठी हा, उगी की टव पत्रपानित पहिर पक गए हों, जैसे ही उसके कदमों की अघात लग गए । उगने कीत उठाकर देला तो देलता रत गया । एक क्षण अपने कानों पर बिावाग न ही रहा था, अब जीवों पर नही था ।

सामने सता खड़ी थी । झुकी-झुकी छुईमुई-गी सता नही । तीर्थ उसकी ओर एकटक ताकती सता । नरेग से उसका यह बार भेना गया, 'क्या यह बही सता है ?' एक क्षण नही, दो क्षण लगे उसे संभव अभी थोड़ी देर पहले की अपनी हवाई उडान भूल, उसके पख धम-गए थे । बड़ी कठिनाई से कठ खुला, "आप ?"

"फिर आप ?"

"ओह 'तारी', सता जी ।"

"नो जी ।"

"अच्छा-अच्छा । 'नोटि' । मैं तो भूल ही गया था, आपकी तुम्हारी यह हिदायत । ओह-ओह" एक हल्का-सा ठहरा सताने उहज हो आया यह, "कहो, क्या हालचाल है ? आजकल इस नाचं बरें इनायत कैसे होने लगी ?"

"न तुम नाचीज हो, न नजरें इनायत होने जैसी कोई बात है ।"

"फिर ?"

"फिर क्या, कुछ नहीं । हम पडोसी हैं, सहपाठी हैं, तो मित्र भी

सकते हैं—नहीं ?”

“जरूर हो सकते हैं । लेकिन बाधा तो तुम्हारी ओर से ही थी न, क्या डर निकल गया ?”

“डर क्या इकतरफा था ?”

“शायद नहीं । पर लड़कों का डरना तो स्वाभाविक है—।”

“स्वाभाविक है—क्यों ?”

“क्या पता, कोई अपमानित कर दे तो ? सामने से चप्पल-मीटिल भी । सकती है—लड़कियों का क्या भरोसा ?”

“ऐ-है” सना ने मुँह बिचकाया, “जैसे लड़के तो सब भरोसेलायक ही होते हैं ।”

“सब न हों, कुछ तो हो ही सकते हैं ।” कहकर उसने शरारत से सना के शीर्ष में झंका ।

सना सौमली, “देखो नरेग, धानचीत को यूँ हलका मोड़ मत दो । न हू जगह ही है ऐसी बहस की ।”

“तो सलो, उधर टेकरी पर चढ़कर बैठने हैं । जरा इत्मीनान में बातें करेंगे ।”

हूँ मैं ...कहीं यह मेरे मन में बैठा पहले वाला खोर ही तो नहीं फिर उड़ा रहा ? ...महज मजाक भी तो हो सकता है यह ! ...हाँ, इसे हल्के मूड में, मजाक रूप में ही लेना चाहिए, वरना मुश्किल हो जाएगी ।' फिर भी एक सतर्कता जरूरी है ।' खोर इसके साथ ही उसके मन में एक सक्लप भी उभर आया, 'इसके मन में कुछ हो न हो, इसका मन साफ करना होगा । इसे राह पर लाना होगा । इसे लीना की मित्र-मण्डली में शामिल करना होगा । दोस्ती साधक है या नहीं, कुछ दिनों में अपने घाप पता चन जाएगा ।'

"कहाँ खो गईं देवी जी, अब देर नहीं हो रही ?"

लता जैसे सोते से जागी, "अ-ह, कुछ नहीं । कहीं नहीं खो गईं । खोने जैसा कुछ है ही नहीं मेरे पास । अच्छा, फिर मिलेंगे । अभी तो चतती हूँ, सबमुच मुझे देर हो गई है ।"

"फिर कब मिलोगी—कहाँ ?"

"अभी कुछ नहीं कह सकती । हाँ, याद आया, लीना तुमसे मिलना चाह रही थी । कभी मिलार्जगी उससे । चाहोगे तो उसकी पूरी मित्र-मण्डली से भी । क्या तुम उनके साथ मिलना, हमारी मित्र-मण्डली में शामिल होना चाहोगे ?"

"तुम्हारी मित्र-मण्डली ? तुम्हारी वह कब से हुई ? तुम तो वहाँ गुमगुम बैठी रहती थीं । फिर जाना ही छोड़ दिया ।"

"यह सब तुम्हें कैसे मालूम, नरेण ?" लता ने अपनी विस्फारित निगाह उस पर डाली । वह भीतर तक हिल गई थी । हैरान ही नहीं, परेशान भी हो आई थी, 'तो मैं बेकार ही बन रही हूँ, इसके सामने । यह तो मेरी सारी पूर्व कमजोरी जानता है ।' पर वह पहले की तरह 'नर्बन' होती, इसके पूर्व ही नरेण ने उसे चौकाने के लिए दूसरा पटाता छोड़ दिया, "अब तो वह हमारी मित्र-मण्डली है जनाब । अब मैं तुम्हें फिर से वहाँ आने के लिए आमंत्रित करता हूँ ।"

लता के मन का आकाश छँट गया । उसके सामने अब सारी बात साफ थी । वह खोपल ही नहीं गई, आगे बढ़, उसने सारी स्थिति अपने हाथ में खी ले ली, "समझो, तो यह तुम्हारी जागृती नहीं, लीना की कारस्थानी

थी। मुझे पहने ही मालूम था, वह ऐसा करेगी। पर वह अनुमान न था कि इतनी जल्दी। तभी मैं कहूँ, यह नरेण का बच्चा उस दिन ठिठक कर बात कैसे करने लगा ?”

“तभी मैं कहूँ यह लता की बन्द कर्मी खुलने-खिलने कैसे लगी ?”

“अच्छा जी, ‘हमारी जूती, हमारे ही सिर’ ?”

“अच्छा जी, ‘हमारी बिल्ली और हमी से म्याऊँ’ ?”

नरेश की यह नकल उसे बहुत प्यारी लगी। फिर भोगुस्से का इजहार जरूरी था, “उह” और सामने से छोटे भाई की आंता देख, पैर पटकती वह चम पड़ी। पीछे से एक मुस्कराहट छोड़ नरेश ने भी अपनी राह पकड़ी।

घटक उठे। तभी सामने मे आती लता-नरेश की जोड़ी को देख, उन्हें उछलने का मौका भी मिल गया और कुछ छेड़खानी करने का भी, “ओ, ये छुपे हस्तम भी आ पहुँचे।”

“छुपे हस्तम ? क्यों ? हमने क्या किया छुपकर ? जो है, जैसे है, सीजिए, आपके सामने हाजिर हैं।” दोनों बाँहें फौनाकर सिर झुकाते हुए ‘आदाब बर्ज’ की मुद्रा में यह सना थी।

सीता बाँध भर उगे देखती रह गई। एकवारणां उमे अपनी आँखों-कानों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर वह अपने लिए प्रशिक्षण की सफलता पर मन्तोष से भर आई। नरेश यो तो आकर उनमे इस तरह घुन-मिल गया, जैसे बरमो मे उनके साथ हो, पर सना के बारे मे उसकी हितक अभी बरकरार थी। इसलिए सता को लेकर उसने कोई बात नहीं की न सबके बीच सता से कुछ बोला ही। वस कर्म-कभी उसकी ओर कनसियों से देख-भर लेता था। ऐसे समय सता कुछ सकुचिन ही आनी, कुछ चिठित हो उठती, फिर शीघ्र ही सहज हो स्वयं को संभाल लेती।

पर इस ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। आपसी चर्चाएँ जोरो पर थी—देग की, समाज की, मस्कृति की, कमा की, युवा पीढ़ी की, साहित्य की, पीढ़ियों के अंतराल की, सम्बन्धों और सुविधाओं की, अवसरों और उपलब्धियों की। गम्भीर और विचारोत्तेजक। इसलिए बीच-बाच मे आशोश भी उभरता, तर्कों की धार भी पैनी हो उठती। पर आज बहस किसी खास मुद्दे पर केन्द्रित न थी, इसलिए वातावरण मे आता उबाल जल्द ही बँध जाता। दण-क्षण उठने-गिरते समुद्री ज्वार-भाटे को जिस तरह तिनारे खड़े लोग एक आनन्दित तटस्थता से निहारने रहते हैं, कुछ-कुछ वैसे ही मूढ़ मे। वो बहसों का माहील बाँधिल न हो पाया, पिकनिक-भावना से ही हल्का-फुल्का बना रहा।

फिर खाने-पीने का दौर चला तो सबने गम्भीरता का ओझा हुआ वह माना सबादा भी उतार फेंका और बहसों की फुलझड़ियाँ खोदने लगे। वही किसीके डिफिन मे से कोई चीज उठाई जा रही है। वही, किसी के हाथ मे स्वादिष्ट पकवान छोना जा रहा है। वही अपने प्रिय मित्र के मुँह मे बटा-सा कोर रूँसा जा रहा है तो कहीं पानी छलवाकर

बिपय और भी है—डेरों

संयुक्त मित्र-मण्डली

बरमान बोन गई। नदी भी जाकर निरबन गई। अब गुना-सिना मोगम है बसन्त का। चारा और प्रकृति में नई छटा नए अकूर। इसी तरह युवा होते मनो में भी नई ऊर्जा भर आई है, नई उमंग, नया उगाह लिए बन्धननाशील मन नई उडानें भरना चाहता है। पर पद्य परीक्षा-बिना के घागे में बंधे हैं। जब तक यह धापा खुलेगा बमत बोन जाएगा।

तो क्या किया जाए ?

परीक्षाएँ सिर पर हैं। कुछ दिन सारा धूमना-फिरना, दोस्तों की बैठक-बाजी, गप्प-बाजी, बहसों और चर्चाएँ बन्द रखनी होंगी। इसलिए तय हुआ कि इस मन्त्र में आज आखिरी बार मिल लें। अपनी-अपनी परीक्षा की तैयारी में जुटने में पहले बाहर जाकर एक 'पिकनिक' मना लें। इससे

—नेपाल का जोगा जो मजारी तो अलिय नम उकेन—

लडके-लडकियों की धा, यह मित्र-मण्डली। पर अपनी अलग-अलग हस्ती भूत, सभी एक मस्ती के आलम में डूबे-सराबोर। दीपक-लीना में आते ही एक घोषणा कर दी, "आज के दिन पढाई की, मोट्टस की, परीक्षा की कोई बात नहीं होगी।"

'हुर्रा' सामूहिक शुघो की एक लहर हवा में उछली। फिर उभरी

"किया क्या होगा ?" और इसके साथ ही कुछ जवान दिल

घड़क उठे। तभी सामने से आती लगा-नरेण की आंटी को देख, उन्हें उड़लने का मौका भी मिल गया और कुछ छेड़खानी करने का भी, "दी, ये लूये रस्तम भी आ पहुँचे।"

"हूपे रस्तम ? क्यों ? हमने क्या किया छुपकर ? जो है, जैसे है, लीजिए, आपके सामने हाजिर है।" दीनो बाँहि फैलाकर सिर भुंकाने हुए 'आदाब अर्ज' की मुद्रा में यह लता थी।

लीना आँख भर उसे देखती रह गई। एकवारगी उसे अपनी आँखों-कानों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर वह अपने दिए प्रशिक्षण की सफलता पर सन्तोष में भर आई। नरेण यो तो आकर उनमें इस तरह घुल-मिल गया, जैसे बरमो से उनके साथ ही, पर लता के बारे में उसकी हिचक अभी बरकरार थी। इसलिए लता की लेकर उसने कोई बात नहीं की न सबके बीच लता से कुछ बोला ही। उस कभी-कभी उमकी आग कनखियों से देख-भर लेता था। ऐसे समय अता कुछ सकुचिन हो जाती, कुछ चिंतित हो उठती, फिर जीप्र ही सहज ही स्वयं को संभाल लेती।

पर इस ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। आपसी चर्चाएँ जोरो पर थी—देश की, समाज की, संस्कृति की, पला की, युवा पीढ़ी की, साहित्य की, गीतियों के अंतराल की, सम्बन्धों और मुविधाओं की, अवसरों और उपलब्धियों की। गर्भोत्तर और विचारोत्तेजक। इसलिए वाच-वाच में आक्रोश भी उभरता, सकोँ की धार भी पैनी हो उठती। पर आज बहस बिसो सात मुद्दे पर केन्द्रित नहीं, इसलिए वातावरण में आता उवाल जल्द ही बँड जाता। क्षण-क्षण उठने-गिरते समुद्री ज्वार-भाटे को जिस तरह किनारे लड़े लोग एक आनंदित तटस्थता से निहारने रहते हैं, कुछ-कुछ वैसे ही मूड में। तो बहसों का माहीन बोभिल न हो पाया, पिवनिक-भावना से ही हल्का-फुल्का बना रहा।

फिर साने-वीने का दौर चला तो सबसे सम्भीरना का आँटा हुआ वह भीना लबादा भी उतार फेंका और बहकहो की फुलमडियाँ छोड़ने लगे। कहीं किसीके टिफिन में ने कोई चीज उड़ाई जा रहा है। कहीं किसी के हाथ से स्वादिष्ट पकवान छोना जा रहा है। वहीं अपने प्रिय मित्र के मुँह में बड़ा-सा कौर टूसा जा रहा है तो कहीं पानी छपनाकर

बाईं पुराना या ताजा मिठाई का रही है। बग इतना ही, इनके अतिपुत्र नहीं। इन बौद्धिक संरक्षकों में एक भी व्यक्ति ऐसा न था, जो मरने के बगल भी टिपोरेवन पर उतरे। एक साधुनगर, एक महिला इतना बनाए रखती है, यह मायदा उनके बीच एक हीन सम्बन्धना था। जो इन मित्र-भण्डारी की साधुदिक अभिप्राय थी।

नगर की धूमि अभी इन मरनेवालों में शामिल हुए दुग्धा-दुग्धा जो रोज ही हुए थे, उनके लिए यह सब बहुत विरमयकारी अनुभव था। नगर के लिए यह अहमाम नया न होकर भी इन मायने में सुन्द और आह्ला-कारी था कि अब वह इनमें 'अन-विट' न थी और चाहती थी कि नरेड भी यह सब जाने-नामके में उसका रास्ता आमान हो जाए।

छाना-पीना समाप्त हुआ। पौटो देर इधर-उधर सेटने-नवरने, मुन्ताने, फिर बैठकर गेनने के बाद सब लोग उठ सहे हुए। टहले, पूने, बाहर सिली महारो के बीच प्रकृति के माय समरस हुए। वही कीर्तों, घटबुत्तों का दौर चला। भूमे, नाथे। फिर शाम होने-न-होते में छारे पनेर अपने-अपने घोंसलों की ओर लौट चले—अपने पक्षों में नई स्पर्धि, नया फैनाव लिए, अपने कैरियर की नई साधन देने, अपने भविष्य को अधिक विस्तारित करने।

नरेड की आँखों में यह विस्तार अभी समा नहीं पाया था। या शायद उसका अन्तर अभी इसे पचा नहीं पाया था। उसने सता से विदा लेते जब उसका हाथ दबाया तो सता को उसकी आँखों में जग उठी कामना की लपट साफ दिखाई दी। एक विचित्र ढंग से नजर गडाते हुए वह फुस-फुसाया था, "फिर कब मिलोगी?"

लता चुनकी, "अभी सबका फैसला मुना तो है जनाब ने कि 'परीक्षाओं के बाद', फिर भी?"

"हाँ, फिर भी। परीक्षाओं में तो अभी बहुत दिन है!"

"तो?"

"तो क्या हम बीच में किसी 'डे ट' को नहीं मिल सकते? किसी भी एक दिन, कहीं बाहर-एकांत में?"

लता का माया टनका। पर भीतर उठते गुस्से के उबाल को उसने

हवा लिया। झोकन्ती हो आई कि आसपास किसीने सुन तो नहीं लिया ? फिर सावधानी से एक शब्द 'देखूंगी' उछालकर बहू उसे छोड़, आगे निकल गई। पहले उसके साथ चलते हुए, फिर अकेली ही अपने घर की ओर बढ़ खनी। 'शुक्र है, किसी का ध्यान हम ओर नहीं गया'—पर के नज़दीक आकर उसने राहुर को साँस भी। टहुरकर तोषा, 'नीना मैं तो खरूर लक्ष्य किया होगा !' फिर स्वय ही सिर को झटका दे, समाधान निकाल लिया, 'कोई बात नहीं। नीना को तो मैं यँ भी बता ही देनेवाली हूँ कि नरेण की यह हरकत मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आई।' फिर उसे याद आया, हाँ, इस रविवार को तो मम्मी भी हमसे 'डेंटिंग' पर ही बात करने वाली हैं न, वही यह समस्या रखना ठीक होगा। पर आगे होकर नहीं, पहले उन्हें सुनूंगी, फिर जो पूछना होगा, पूछ लूंगी। हो सकता है, नरेण समल न हो, मैंने ही उसकी नीयत को गलत समझा हो ? .. नहीं-नहीं, गलत नहीं समझ। यह मेरी पूर्व भावुकता या भीतरी दुर्बलता ही उभर कर भावद उसका पस ले रही है। जो हो, मुझे इस बात को लेकर अब और उलझना नहीं है। परसाँ ही तो मम्मी इस उलझन को सुलझाने वाली हैं, तो बेकार में अभी से क्यों भाया खराब कई ?' और उसने सिर को एक बार फिर झटककर जैसे यह विचार मन से निकाल देना चाहा कि सहज रूप से घर में प्रवेश कर सके।

के अघेरों में भटकते युवा इस प्रकाश-स्तम्भ से अपना दिशा-पथ आलोकित कर सकें; अपनी बेंचैनियों में राहल पा सकें। इसलिए 'सर्वोत्तम' वाला सूत्र हाथ लग जाने के बाद उसके लिए 'डेटिंग' जैसा प्रश्न बहुत गौण हो आया था। इसे लेकर कोई दुविधा, कोई परेशानी अब उनके सामने नहीं थी। इसलिए इन विषय की खर्चा में भी अब उनकी पहले वाली दिल-चस्पी नहीं रह गई थी। फिर भी 'कुछ सुनने-समाझने में क्या हर्ज है' वाली क्षीण उत्सुकता धायद बची थी। तो लता के आते ही उसे लेकर वह मम्मी के पास चली आई।

पर लता अभी ऐसे बुलद द्वारादो वाली लडकी नहीं बन पाई थी। उसके भीतर आया नया परिवर्तन उसके प्रतिक्षण का परिणाम था, उसकी परिपक्व मानसिकता की उपज नहीं। ऊपर से काफी दृढ़, तटस्थ, हाजिर-जवाब दिमाने की कोशिश करते हुए भी भीतर से अभी वह एक कमजोर लडकी ही थी—बाबांझोल, विचलित, दुविधाग्रस्त, जैसे अपने आपसे हरदम लडती हुई। सभी तो नरेण के एकात-भेंट के प्रभाव में वह भीतर से घरी गई थी और ऊपर में समतमा आई थी। अभी तक अपने भीतर से उसे कोई जवाब नहीं भूक रहा था। मम्मी द्वारा दिया गया ममाधान की मानों उनके लिए एक सहारा था। इसलिए उनकी उत्सुकता, इन खर्चा को लेकर तमाम भिन्नक के बावजूद, उसके चेहरे पर लिली थी। वान कहां से, कैसे पुरु करे? पहला प्रश्न क्या हो? अच्छा हो, सीना ही पहले बात टटाए' आदि शक्य उसके मन में घुमट ही रहे थे कि मम्मी ने जाकर उसे उबार लिया, "कहो लता, कैसी हो? आज तो तुम्हें 'डेटिंग' पर जान करनी है न?"

"सीना को क्यों नहीं?" लता घबरा उठी।

"धायद सीना ने अपने भीतर से इसका उत्तर पा लिया है।"

"आपको कैसे मालूम मम्मी?" सीना थकी। वस यही उसकी ओर से 'पहल' हुई। दूसरी पहल उसे करनी भी नहीं थी।

उत्तर में मम्मी मुस्कुरा-भर दी, "मैं क्या जानती नहीं मुनिया। छेग, छोड़ो इसे। हाँ, तुम बचाओ लता, तुम्हारी यही समस्या है न कि नरेण की ओर से ऐसा प्रस्ताव आए तो तुम्हें क्या करना चाहिए?"

की स्थापना से है कि जिन्हे घर से ठीक माहौल, सहयोगी व्यवहार या उचित निर्देशन न मिल सके, वे समय पर इन सस्थाओं से सलाह व मदद ले सकें और 'डेटिंग' जैसे पश्चिमी रिवाजों से है कि बदले समय में ऐसी व्यवस्थाओं को अपनाता जरूरी नो तो उनका भारतीयकरण कर लिया जाए।"

"किशोर सलाहकार केन्द्रों की बात तो ठीक कि लता जैसों की राह आसान की जाए, मान लो आप इसे न मिलती मम्मी, तो इसका क्या होता ? पर 'डेटिंग' का भारतीयकरण ?" लीना ने भी वहाँ आकर अपना उस्मुकना जाहिर की।

"हाँ, बदले माहौल में किन्हीं बाहरी परम्पराओं को अपनाता अनिवार्य हो जाए तो उनका भारतीयकरण ही करना होगा, वर्ना कट्टू अनुभवों से सबक ले, उन्हें उखाड़ फेंकने के बाद अपनी मर्दियों पुरानी रूढ़ परम्पराओं पर लोट आने की स्थितियाँ बन जाएँगी। हमें परम्परा और रूढ़ि में अन्तर करके चलना होगा। भारतीय परम्परा तो एक प्रवाहमान परम्परा है। इसमें आत्ममानीकरण का अद्भुत गुण है। जब, जहाँ इस गुण का ह्याम हुआ, परम्परा रूढ़ि धनकर विकास-व्यय की बाधा बन गई। पर, मैं समझती हूँ, यह सब समझाने के लिए मुझे जरा इसके विस्तार में जाना होगा। पहले 'डेटिंग' है क्या, इस पर ही बात करें

" 'डेटिंग' का मीघा-सा अर्थ है, किसी स्थान पर मिलने के लिए कोई नियम निश्चित करना। यह 'डेट' विमी के लिए भी निश्चित हो सकती है। पर किशोर-किशोरियों की मैत्री में इसे एक विशेष अर्थ दे दिया जाता है। फिर एवात मिलन की बात हो तो इनकी भीमाओं और खतरों को भी जानना जरूरी हो जाता है। विदेशों की 'डेटिंग' पद्धति भारतीय लड़के-लड़कियों को भी आकर्षित करने लगी है तो उन्हें इसकी पुष्टभूमि व नियमों को भी जानना चाहिए। जिस परिवेश का यह रिवाज है, वहाँ लड़के-लड़कियों को छुपकर मिलने या इसे लेकर कोई धन्यता करने की भावना मन में पालने की जरूरत नहीं होती। उनकी सांस्कृतिक परम्प-
— यह बहुत जायज है। बल्कि कोई किशोरी इस धोर सच नहीं लेती तो ताम्ब मानकर मन-चिकित्सक के पास ले जाया जाता है। क्या

तुम उम भयावह स्थिति की कल्पना कर सकती हो कि यदि तेकम सम्बन्धों की खुली छूट दे दी जाए तो समाज में गुण्डों की बन जाएगी, सभी शरीरक सुबकों को पीछे धकेल दिया जाएगा और किसी भी सुन्दर लड़की का जीवन सुरक्षित नहीं रहेगा। सामान्य जीवन सुरक्षित रहे, व्यवस्थित रहे, इसीलिए तो कुछ सामाजिक नियम बनाए जाते हैं। कानून को व्यवस्था या नियम भंग होने की स्थिति में ही काम करना है। मनुष्य को अपने लिए ही इन नियमों के भीतर रहने के लिए आत्म-अनुशासन में चरना होता है। हाँ, समय के साथ यदि कोई नियम अनावश्यक बचन या अंकार की रुढ़ि बनकर व्यक्तियों के व्यक्तित्व-विकास में बाधक बनने लगता है तो उसे तोड़कर या छोड़कर नये नियम अथवा नये सामाजिक मूल्यों का निर्माण भी करना पड़ता है। अंशक रुढ़ि-भंग के लिए सर्वाधिक आक्रामक इस सर्वाधिक ऊर्जा भरी किशोर उम्र में ही होता है, पर तुम्हें जानना है कि जिस तरह सफल प्यार के लिए भी, एक समझदारी भरी उम्र होनी है (वर्षों से नहीं, समझ से आँकी गई उम्र), उसी तरह सफल विरह के लिए भी। किशोरारवस्था तो इन दोनों उल्लेखियों के लिए पारोरीर-मानसिक-मायात्मक तैयारी की उम्र है, जिसमें सर्वप्रथम ध्यान व्यक्तित्व विकास पर ही रहना चाहिए।”

‘लेकिन नन्ही, अब ?’ लीना ने टाना।

“हाँ, मैं अभी बात पर आ रही हूँ कि फिर भी अब बन्धन अधिक बसने लगे तो बन्धनों को बस करने की बात भी सोची जानी चाहिए कि अनावश्यक घटन से मुक्ति मिले। लड़के-लड़कियों के सृजक मेलजोल पर बड़े प्रतिबन्धों के कारण ही अनावश्यक, यदि कभी-कभी अतर्लोक हृद तक जाने वाली जिज्ञासा की धल मिनता है और अवांछित परिणाम भी सामने आते हैं। तो माता-पिता को अपने किशोर बच्चों की भावनाओं की समझना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि इस उम्र में उन्हें हमउम्र साथियों की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि अविभाजनों के अभाव की। उनके बीच सहपाठी-भावना, मित्र-भावना का विकास हो, परो-रि-रि-रि नहीं, माँ-बाप की जानकारी में निःशकौच मिलें-जुलें, इसके उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही सारे ऊँच-नीच की

जानकारी देकर उन्हें उनकी सीमाओं से भी अवगत करा देना चाहिए। सीमाओं, जो उन्हें जरूरी लगें, बंधन न लगें अपने हित में वे स्वयं को आत्म-अनुशासन में रखने में समर्थ हो सकें। आजादी के साथ जुड़े उत्तरदायित्व को जानना ही अपनी सीमाओं की पहचान करना है। माँ-बाप उन्हें केवल यह पहचान करा दें और फिर दूर से उनपर निगाह रख, अपना हस्तक्षेप कम करके, उनपर विश्वास करें तो, मेरे विचार में, वे उनका विनाश भग नहीं करेंगे, बल्कि समय पर स्वयं उनकी सही सलाह की अपेक्षा रखेंगे। 'कोई उनके हितों की परवाह करने वाला है', यह अहसास ही उन्हें स्वयं में समर्थ बनाने के लिए काफी होता है। इसलिए ऐसा सोचना गरत है कि सड़के-सड़कियाँ माँ-बाप के संरक्षण की परवाह न कर स्वच्छंद होना चाहते हैं, बल्कि 'उनकी कोई परवाह नहीं करता', 'उनके लिए किसी के पास समय नहीं है' जैसी बातों का यह अहसास ही उन्हें गलत राहों पर भटक कर उच्छृंखल या घर वालों के प्रति विद्रोही बना देता है।"

"हाय मम्मी, तुम्हें यह सब कैसे मालूम ? यही बात तो मैंने अपने कई दोस्तों से सुनी है।" लीना चहकी।

पर सत्ता का घोर अजब तक जवाब देने लगा था। उसे अपनी समस्या का समाधान तो अभी तक मिला ही न था कि वह 'डेटिंग' को स्वीकार करे या अस्वीकार ? ओर मम्मी है कि इतना सम्बा भाषण पिलाने लगी। फिर भी उसने अब तक मौन रखा तो इसलिए कि यह सब सुनना भी उसे अच्छा लग रहा था। बस जरा 'डोज' ज्यादा हो गई और अपने उत्तर के इन्तजार में वह उलझ गई। अब उससे न रहा गया, "पर मम्मी ?"

"तुम्हारी बेशर्मी मैं समझ रही हूँ सता, इसलिए उसी प्रश्न पर आ रही हूँ।"

"प्रश्न ? मैंने तो कोई प्रश्न नहीं किया था ?"

"बनो मत, मैं जानती हूँ तुम क्या जानना चाहती हो ! पर क्या तुमने ही शुरू में नहीं कहा था कि समस्या मेरी नहीं, सभी की है, इमीलिए मुझे जरा विस्तार में जानना पड़ा कि इस प्रथा की जरूरत-बेजरूरत पर बात करने से पहले उन परिस्थिती व भारतीय स्थितिओं को समझा जाए, जिनमें वही इसका स्वरूप क्या रहा, इसके परिणाम क्या --- ? और यही

इसका स्वल्प क्या हो कि बँसे परिवारों से बचा जा सके ?

“बँसे तो यह कतई जरूरी नहीं कि कोई विदेशी प्रथा हमारे अनुभूत नहीं है तो भी उसे अपनाया जाए, पर अब विभिन्न सस्कृतियाँ इनकी पुनर्मिल गई हैं कि इन्हें पूरी तरह अलग कर पाना ही संभव नहीं रहा। ऐसी स्थिति में जरूरत है, नई-पुरानी, देशी-विदेशी, सभी अच्छी बातों का समावेश करके, अपनी सांस्कृतिक भूमि पर लट्टे होकर, नए युग के अनुभूत नए मूल्यों का निर्माण करना। चाहे हम ‘डेटिब’ नाम न दें, पर यह तो सभी जानते हैं कि हमारे यहाँ उस बंग का मेल-मिलाप चोरी-छिपे ढंग से चल रहा है; खूब-घबलते से चल रहा है और हम प्रथा को सामाजिक मान्यता न देने वाले भी इसे रोक नहीं पा रहे। तो क्या भारतीय सामाजिक मर्यादाओं के भीतर हम मेसजोल के लिए कुछ नियम निर्धारित नहीं किए जाने चाहिए कि विवाह-पूर्व की यह मंत्री दोनों पक्षों के लिए सभी-पुष्प मनोविज्ञान समझने में सहायक हो सके ? सड़के-सड़कियाँ सफल जीवन-साथी के चुनाव के लिए मानसिक रूप से परिपक्व व समर्थ हो सकें ? आज हमारे यहाँ इस प्रथा की इसी रूप में जरूरत है, चले ही हम इसे यह नाम न देकर कुछ और नाम दें या कोई नाम ही न दें।”

“तो आपके क्याल मे मम्मी, ये नियम क्या होने चाहिए ?” अब सता सुली। जैसे इस घड़ी का ही उसे इन्तजार था।

“हाँ, यह प्रश्न ठीक उठाया है तुमने। पर यह सब भी क्या मुझे ही बनाना होगा ? मेरे क्याल में बाहर आते-जाते और सहेलियों, मित्रों के बीच उल्लेख-वैल्लेख अब तक अपने अनुभवों से ही जान चुकी हूँगी तुम लोग कि कहीं कितनी छूट लो जा सकती है ? कहीं भीमा-रेखा खीचनी होगी ? अच्छा हो, तुम युवा लोग आपस में मिलकर ही ये नियम निर्धारित करो और केवल सहमति-असहमति के प्रश्न पर ही हमें बीच में लाओ—नहीं ?”

मी ने बारी-बागी से दोनों के चेहरों पर नजर टिका दी।

प्रति हम पुरानी पीढ़ी के लोगों के मन में कोई सहानुभूति की भावना ही रहती है, जबकि हम स्वयं इस स्थिति से गुजर चुके होते हैं। रेवन एक ईष्यालु-सा भाव रहता है कि हम आज के युग में क्यों न पैदा हुए ! और परिवर्णाम होता है, सुका-छिती, मानसिक ध्वभिचार, जवानी के प्रविबो विचार । युवाओं पर इसका अतजाने ही अवाछिन असर पडता रहा है- नार्जनिक स्थलों पर लिमे गदे बाक्य, राह चलती सडकियों से छेड़छाड़ सभ्य सेवमी साहित्य के प्रति रचि, सनगनी की तलाश, आत्म-रति की आदत इसी प्रवृत्ति के दुष्परिणाम है । और सबसे बडा दुष्परिणाम है, मंड धारणा कि सेक्स को बीच में लाए बिना स्त्री-गुरुप की मंडी सभ्य नहीं है । मुगानुकूल इस मंडी का सभ्य और निर्दोष रूप में सभ्य बनाने के लिए ही कवित 'सेटिंग' पडनि के भारतीयकरण की आवश्यकता है कि अनावश्यक ताक-भाकि छेड़छाड़ और इससे जुड़े अवराधों में मुक्ति पाई जा सके ।

"पहुंता रही उद्देश्य की मात्र । अब आएँ नियमों पर । सबसे पहले मा अपनी सोच को इस दिशा में प्रेरित करें कि विवाह-बेवना की सेकर -ो किमी सडके में मंडी नहीं बननी है । कोई आवश्यक नहीं कि नियमों विवना हो उभो में विवाह न । विवना का विवना नही सीमित रसत पाति । विवाह सा किमी एक में ही होगा, मित्र एक से अधि न सातों है । एक-दूसरे का जानने-गमभने, समय-अगमय देखने-गरणो के विग पा करती भी है कि मित्र एक से अधि न । पर मित्रो के बीच किमी सडके की प्रतिद्विगा या अधिचार-भावना का प्रोत्साहित न होकरना पाति । न ही सडके को अतजाने सरसक बनने देना पाति । या परवर रवगणना न नियम के लिपाह है । विवाहों के सुनेवन में भादान-प्रदान में बाधक भी । विवना का सुन मंड ही खुना विचार-रिमल है । अने वार में का अनी प्रवृत्ति के बारे में किमी सुचार-दिवाह में रतिन, सभी तो एक-दुगरे का सभ्य रूप में गमभने का अतजाने विग मंडगा । पर अतजाने होना न है कि जवानी विवना में ही सुविधो का उपाग और सुविधों को विवना जाना है और अतजाने अतजाने परिवार के बारे में का-बादर हीं जाती जाने है का जान बागवण का निर्णय उपा बाक र अतजाने

मशानुमति अज्ञित को जाती है। और फिर कारणवश मैत्री भंग हो जाने पर या बड़े सम्बन्धों में देखने-दिलाने, ऊँचे सपने पालने के बाद विवाह होने पर निराशा हाथ लगती है व दुष्परिणाम भी झेलने पड़ जाते हैं।”

“हृदय मम्मी, आपको यह सब कैसे मालूम है ? मेरी पहचान के कई लड़के-लड़कियों का यह हृदय में देख चुकी हूँ।” फिर लता की ओर मुखातिब होकर, “माद है लता, धीनु, दीनु और स्वीटी, सतोप की बात, उनके साथ क्या हुआ ? .. लगता है, मम्मी को आसपास के लोग सब बता जाते हैं। ओह, भूल गई, मैं भी तो आकर इन्हें सब कहानियाँ सुनाया करती हूँ। मम्मी चुपचाप मेरी बड़बड़ सुना करती हैं। मैं समझती थी, सचि नहीं भती, मैं थोड़ी बोलती रहती हूँ। अब पता चला, ये सुनती ही नहीं, चुपचाप सुनती भी रहती हैं। कौन विज्ञेयण रहता है न इनके पास, इन सब घटनाओं का। ओह ! मम्मी द श्रेट ”

“बस-बस, और नहीं। या तो तू बोल ले या फिर मुझे लता के साथ अपनी बात पूरी करने दे।”

“लता के साथ नहीं, हम दोनों के साथ।”

“ठीक है। फिर मुझे तो सही। अभी परीक्षा से पहले तुम लोग मिल-कर पिकनिक पर गए थे न, वैसे ही कभी-कभी बाहर सैर-सपाटे के लिए कुछ लड़के-लड़कियों को मिलकर अपना एक ग्रुप बना लेना चाहिए और निधि निश्चित करके मिलते-जुलते रहना चाहिए। यही सामूहिक 'डेविंग' होगी। इसी ग्रुप में से एक समय बाद जिन्ही लड़के-लड़कियों के बीच अन्तरंग मैत्रियाँ भी हो सकती हैं, जो एक-दूसरे को अपेक्षाकृत अधिक पसन्द करने लगे या जिनके विचार परस्पर अधिक मिलने लगे। तब भी, किसी एक से अन्तरंग मित्रता स्थापित हो जाने पर भी, उनके बीच एक-दूसरे की गरिमा, अस्मिता की रक्षा करने के लिए, एक-दूसरे का आदर करते हुए, अपनी मैत्री को एक गौरवमय ऊँचाई पर रखते हुए, एक मूक समझौता जरूरी है। गीमा-रेखा न लीखने के लिए ही नहीं, आत्मबल जुटाने, आत्मनिर्भर बनने के लिए भी और सामाजिक बाधाओं व अनावश्यक संदेह-अविश्वास वाले वर्तमान माहौल पर विजय पाने के लिए भी।

१२. माहौल ऐसे ही नहीं बदला करने। कुछ पाने के लिए कुछ त्याग भी करने

होने हैं। घोरी-छिपे मिलने की बात अपमानजनक समझने पर ही यह संभव है। लड़का जब भी अपनी मित्र लड़की को बाहर ले जाए, उसे वहीं बाहर आकर मिलने के लिए बाध्य न करे, उसके घर आकर उसे सम्मान के साथ अपने साथ ले जाए, फिर उसी तरह घर पर छोड़कर जाए। यदि वे अपने माता-पिता को यह विश्वास दिला सकें कि वे कोई गलत कदम नहीं उठाएंगे और जब भी कोई निर्णय लेंगे, उनसे सलाह-अनुमति लेकर या कम से कम उन्हें बताकर ही कोई कदम उठाएंगे तो आज बदले पुण की माँग को समझकर कोई भी समझदार माता-पिता उसमें अड़चत नहीं डालेंगे। तब न उन्हें बदनामी का भय होगा, न घर की उपेक्षा या ताड़ना का। लड़के द्वारा अनुचित लाभ लेने या लड़की की अमुरक्षा की समावना भी क्षीण हो जाएगी।

“इस दृष्टि से भारतीय परम्परा में विवाह से कुछ समय पूर्व सगाई की जो रस्म चलती आ रही है, उसे बढ़ावा देना भी ठीक होगा कि माता-पिता की निगरानी में वे एक-दूसरे को समझ-पराख सकें। पर समयानुसार इसमें यह परिवर्तन जरूरी है कि सगाई को विवाह की गारंटी न माना जाए। मन न मिलने पर लड़का-लड़की सगाई तोड़कर स्वतन्त्र हो सकें। इसे बुराई या बदनामी के रूप में लेने के बजाए, एक अच्छाई के रूप में यो लेना चाहिए कि बाद में असफल दाम्पत्य होने या विवाह टूटने के बजाए, विवाह-पूर्व अलग हो जाना ही अकनमन्दी है। पर सगाई के दौरान भी लड़के-लड़कियों को विवाह-पूर्व यौन-सम्बन्ध से बचना चाहिए। विरूप रूप से लड़कियों को तो यह सावधानी अवश्य ही बरतनी चाहिए, चाहे मामला सगाई का हो या प्रेम का या केवल मैत्री का। आपसी विश्वास और आत्मविश्वास दोनों दृष्टियों से यह जरूरी है कि सर्वोत्तम के समर्पण को सही समय पर अपने सर्वप्रिय व्यक्ति के लिए संजोकर रखने का सतोष प्राप्त हो और आत्मसमय द्वारा आत्मबल पाने का अवसर भी मिले, जो आगे जीवन-भर की सफलता की गारंटी होता है और दाम्पत्यक सह-भावना में सहायक। इसलिए सामूहिक मैत्री, सामूहिक ‘डेटिंग’ से आगे बढ़कर किसी एक से प्रेम करो, व्यक्तिगत ‘डेटिंग’ पर जाओ तो इन बातों का ध्यान रखकर कि एकान्त में कम-से-कम बिना है। मिलना है तो

एक-दूसरे का आदर करते हुए, अपनी अस्मिता, अपने परिवारों की इज्जत का ध्यान रखते हुए और अपने आत्मबल, आत्ममदम का दामन धामे हुए। यही भारतीय 'डेंटिंग' पद्धति होगी, यदि उसे यही नाम देना जरूरी हा तो।"

"लेकिन मम्मी, कितने माँ-बाप तुम्हारी तरह सोचने वाले मिन्नेमें कि ऐमे 'डेंटिंग' पद्धति चलाई जाए या अपने बच्चों पर इस तरह विश्वास कर उन्हें छूट दी जाए ?"

"आज न मिलें, कल मिलेंगे। लेकिन तब, जबकि आप युवा नांग अपने लिए स्वयं ऐसी आचार संहिता तैय करोगे और अपने कृत्यों से माता-पिता को अपने विश्वास में लोंगे। आज के विपदें माहौल के लिए जब हम, आप, सभी जिम्मेदार हैं तो बदलाव भी तो हमें ही लाना होगा न। युवा पीढ़ी पर ही हमारी सारी आशाएँ टिकी हैं, उनकी चरित्रयो की बर्बादी और आपसी असमझस्य में घरों की बर्बादी अब और सहन नहीं की जानी चाहिए। हाँ, मैं यह कब कहती हूँ कि 'डेंटिंग' पद्धति चलाई ही जाए। हमें अपनी अस्मिता की पहचान पानी है, परिचय की तकल नहीं करनी है। पर जब तक अपने नए सांस्कृतिक मूल्य अस्तित्व में नहीं आते, यदि 'डेंटिंग' जैसे शब्दों से ही काम चलाना हो तो बीच के रास्ते की तरह ऐसी प्रथाओं का इस तरह भारतीयकरण कर लेने में भी हर्ज नहीं, मेरा इतना ही मतलब था। इसमें अच्छी प्रथाओं का, नए युग के अनुरूप अपने नए सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण आप लोगी ने ही करना है। हम पुरानी पीढ़ी के अंग्रेजी दासता में विरासत में पाए मूल्यों को ढोने वाले लोगों ने नहीं—बम इतना ही।"

लता भी अभिभूत थी ही, इतने बड़े दायित्व को वहन करने के शौरव में भर सीना भी गम्भीर हो आई। आज तक अपने से बाहर ता उत्तने सोचा ही न था। आज उसे लगा, सचमुच हम युवा लोग चाहे तो क्या नहीं कर सकते। वह दीपक से इनकी चर्चा करेगी और दोनों मिनकर अपने दायरे से बाहर दूसरों के लिए कुछ करने के वारें में भी सोचेंगे। 'दीप से दीप जने' भी तरह एक-एक को साथ मिलाते हुए अपनी आवाज को बुलन्द करेंगे। दीपक ने तो इधर सेसन में भी अच्छा हाव साथ लिया

तकदीर के लिए तदबीर

लता और नरेश

लता कॉलेज के लिए घर से निकली कि सामने से आता पड़ोसी नरेश आज फिर उससे टकरा गया। पर अचानक टकरा ही गया, न नरेश आज रोमास के मूड में था, न लता ही अब वही भावुक या छुईमुई-भी बह गई थी। अब तो वह सहज और व्यावहारिक हो गई थी।

तभी तो, जब एक औपचारिक-सी 'हलो' कहकर नरेश ने आगे बढ़ जाना चाहा, तो लता जैसे असहज हो आई। उसने लक्ष्य किया, आज न तो नरेश के कदमों में वही उत्साह था, न उसके हाथों में बल्ला घुमाने की वह क्षमता, न बातों में वह वाचालता ही। वह ठिठक गई, "क्या बात है नरेश, क्या खेल में हार गए?"

"नहीं। पर हारता भी तो क्या, खेल में हार-जीत तो चलती ही रहती है।"

"फिर? रोज तो इस समय क्या ठाठ से बल्ला घुमाते निकलते हो, आज क्या हो गया?"

"कुछ नहीं। पर तुम मुझे क्या रोज आते-जाते देखनी हो?"

मेरा बालेज के लिए निकलने
समय ही है रोज। यह अलग
कभी ही।"

।।"

इस दृष्टि से समय का ध्यान रख-

है। क्यों न उसकी कलम का सहारा लेकर एक अभियान ही शुरू कर दिया जाए। और उसकी आँखों में उसी समय सक्कर का एक दीप जगमगा उठा। लता की आँखों ने तुरन्त इस ली से दूसरी ली को प्रशिक्षित किया और यह क्रम आगे चल पड़ा। मम्मी उठकर जा चुकी थी। दोस्तों मद्देनियों ने आपस में तय किया कि अब रोज-रोज मम्मी को संभालने करेगी। अब आगे का रास्ता उन्हें स्वयं तलाशना है। और इस सरल के माथ लता ने भी अपने घर की राह ली।

तकदीर के लिए तदबीर

सता और नरेश

सता कानेज के लिए घर से निकली कि सामने से आता पड़ोसी नरेश आज फिर उससे टकरा गया। पर अचानक टकरा ही गया, न नरेश आज रोमास के मूत्र में था, न सता ही अब वैसे भावुक या दूर्मुर्द-सी रह गई थी। अब तो वह सहज और ब्यावहारिक हो गई थी।

सभी तो, जब एक शीपचारिक-सी 'हलो' कहकर नरेश ने आगे बढ़ जाना चाहा, तो सता जैसे अचहज हो आई। उमने लक्ष्य किया, आज न तो नरेश के कदमों में वैसा उत्साह था, न उसके हाथों में बल्ला घुमाने की वह क्षमता, न बातों में वह बाधाशक्ती ही। वह छिटक गई, "क्या बात है नरेश, क्या खेल में हार गए?"

"नहीं। पर हागता भी तो क्या, खेल में हार-जीत तो चमनी ही रहती है।"

"किर ? रोज तो हम समय क्या टोट से बल्ला घुमाने निकलते हो, आज क्या हो गया ?"

"बुझ नहीं। पर तुम मुझे क्या रोज आने-जाते देखती हो ?"

"जाने नहीं, भाने तो अगधर देखती हूँ। मेरा कानेज के लिए निकलने का और तुम्हारा मेमकर सीटने का यही समय तो है रोज। यह अलग बात है कि हमारी भेंट रोज न होकर कभी-कभी हो।"

"तुम चाहती तो रोज भी हो सकती थी।"

"हाँ, हो तो सकती है। पर क्या इसी इगदे से समय का ब्याज रण-कर निकलना डीक होमा ?"

"क्यों, मांग जैसती न उछाई, दसनिण्ट डरतो हो ?"

नहीं इतनी नहीं। पर ऐसा मोहने और बरने ही क्यों, विजयेश्वरी उतारने उठाने का मोहना मिले ? हम बिच है तो क्यों भी, क्यों सोहर भाव से नहीं मिल सकते ? उनके लिए ऐसे मोहने हमारे ही का विप्लव द्वारा क्यों की जन्मन क्यों हो ?”

समझता है, 'जीना एक कर्मनी' का रस कुछ अलग ही चढ़कर ही मुम पत्र। फिर उमें कुछ शरारत सूभी, "मई तुम्हें जन्मन हो, हने है।"

"है, ता डीव है। पर वंगी ही जन्मन दूसरी ओर भी जावे, तब ही प्रतीक्षा नहीं करोगे ? उनावसी और जल्दवाजी क्यों ?”

"जल्दवाजी न ही, जिज्ञासा ही है। उनावसी न ही, उल्लुब्धता ही है।"

"कौसी जिज्ञासा ? किम बात के लिए उल्लुब्धता ?” तता ने तब बचाकर कहा। आज फिर वन किसी भीतरों आशका से भर निहर उठी।

"ओर मैं पूछता हूँ, तुम्हारे बेहरे पर यह कौसी बिन्ता ? क्या उमें तब आशकत नहीं कर सवा हूँ तुम्हें ?” नरेग ने तता की आँखों में से भीका, फिर चिलखिला उठा।

तता फिर बिन्दर उठी, पर मोह ही सँभल गई, "चलो हूँ तो। उमने सीधा जवाब टाल, पलटकर पूछ लिया, "बिन्तातुर तो आज तुम दिखाई दे रहे थे। न जाने कहीं खोए थे कि वस 'हलो' किया और च दिए। मैं तो डर गई, न जाने क्या बात है ? इसीलिए रुक गई। क चलनी हूँ, माधेज को डेर हो जाएगी।" बड़ घड़ी देरने लगी।

नरेग फिर गम्भीर हो आया, "हाँ तता, सबमुच परेशान हूँ आज कम। तुम तो जानती हो, पहाई बीच में छोड, बिजनेस में लग गया। प बिजनेस क्या नौकरी जैसी निश्चिन्तना दे सकता है ?”

"कल तक तो कहते थे, नौकरी में क्या रखा है ? बिजनेस में मन है—अब ?”

"हाँ, काम की स्वतन्त्रता तो रहती है, आर्थिक अभावों से मुक्ति भी मिलती है। अपने काम में मेहनत है तो मेहनत का फल भी है। कम से कम नौकरी जैसे मग्नन तो नहीं। पर बिजनेस में चिन्ताएँ भी कम नहीं होती।”

“अपने काम की स्वतन्त्रता चाहते हो, बिजनेस के फायदे लेते हो और चिन्ताओं से घबराते हो ?”

“तुम तो बात को ऐसे उठा रही हो जैसे यह कोई बात ही न हो ! ठीक है, तुम्हें बिजनेस का अनुभव नहीं। पर आजकल अगर मैं विन्हीं चिन्ताओं से घिरा हूँ तो क्या तुमसे बात भी नहीं सकता ?” नरेश का स्वर भीम आया।

लता को एक झटका-सा लगा। उसे अपनी मूर्खता का अहसास हो आया। एक क्षण लगा उसे संभलने में, “क्यों नहीं, अगर यही न हो तो फिर मित्रता के भावने क्या ? वोसो, शाम को कहाँ मिलते हो ?” उसके स्वर में आप्रवृत्ति भर आई, “अनुभव ही नहीं। मैं कुछ जानती भी नहीं, फिर भी भायद कुछ काम आ सकूँ। और कुछ नहीं तो हौससा तो बड़ा ही सक्तो हूँ—नहीं ?” अब लता को उसकी आँखों में झँकने का अवसर मिला गया।

नरेश अभिभूत हो आया, “मुझे तुमसे यही उम्मीद थी। सच मानो, और कोई अपेक्षा नहीं रखता, जब तक तुम न चाहो, नहीं रखूँगा।”

“और मैं कभी न चाहूँ तो ?” लता ने हँसकर शरारत से धालावरण को हल्का करने की कोशिश की।

“तो कभी नहीं।”

“सच ?”

“हाँ, सच। प्रामिज।”

“ओह ! नरेश द घेट।” लता ने उसका हाथ धाम लिया। इधर-उधर ताका, फिर जल्दी से हाथ छोड़, “अच्छा तो चलती हूँ। शाम को जम्बर मिलूँगी। वही। प्रामिज।”

□

“हाँ, अब बलाओ, किस बात ने इस चुनबुले नरेश को यूँ गम्भीर बना दिया ?” लता अब इतमीनान से उसकी बात सुनने की तैयार हो कर आई थी।

“बात यह है लता, हमारा साभ्य बिजनेस है। पिताजी, बड़े भाई, मैं, तीनों ही मिलकर काम देखते हैं। एक छोटा भाई भी है, जो अभी

काम तीव्र रहा है। गांधी के पास भी है।”

“और बहने ?” सगा ने बीच में टोककर पुछ लिया। उन्हें उभे मरुत के परिवार की पूरी जानकारी भी मिल नहीं थी।

“बहने की है। एक की मारी हो गई है। दूसरी तो को कुछ ही हो, तुम्हारे बालेज में पढ़ रही है, तुममें एक वर्ष पीछे।”

‘समस्या क्या है ?’

“समस्या हमारे बीच नहीं, भाभी की भोर में लड़ी हो गई है। पर बा क्या है, मुख्य काम उनके पति, यानि मेरे बड़े भाई संभालते हैं। सुनाया हम भाभी में बंटता है।”

“तो ?”

“तो क्या, उनका मतमत्र गांधी है। घर में भगडा बर-बरके मि तरह अलग हो जाना। पति को उपमाकर उन्हें अपना बिजनेस चलाने के लिए बाध्य करना।”

“कर लेने दो। तुम तो हो पिताजी के साथ। छोटे का भी तो कर ही रहे हो। यह तनाव कम होना चाहिए।”

“यह तो ठीक है। पर बात इतनी आसान नहीं है। पिताजी से ज्यादा मेहनत, ढोड़-धूप नहीं होती। मेरा अनुभव भी अभी बड़े में जितना बड़ा है ? और छोटा भाई तो पढ़ रहा है। पढ़-लिखकर धर्म से हट बंटाना—या नौकरी कर लेगा, अभी उसका कुछ मरुम्र नहीं। उस बिजनेस में रुचि नहीं दिखती। मत लगाकर काम नहीं सीख रहा।”

“पर पिताजी का अनुभव तो तुम्हारे साथ होगा। उनकी पूंजी भी है।”

“पूंजी तो बही है, जो बिजनेस में लगी है। यह बंट जाएगी। बिजनेस सफलता में चलता हो सके से है। बंटने पर पूंजी ही नहीं बंटती, प्राह भी बंट जाएगी। हमारे बीच प्रतिद्विधा आ जाएगी, जिसका बाहर बा असर पड़ेगा। मैं मेहनत में नहीं धबराता, पर मेरा अनुभव तो अभी का ही है न। ज्यादा सम्पके भाई साहब के ही हैं। तकदीर ने साथ न दिया तो ? भाई तो भाभी व अपने दो बच्चे को लेकर अलग हो जाएंगे, परिवार यानी माँ, बाबूजी, छोटा भाई, उसकी प्यारी, बहन की भाभी, पढ़ सब

..... ?”

२५। जिम्मा ? का यश भी तुम्हें मिलेगा कि नहीं ?" सता ताशावरण को एक झटके में हल्का कर दिया।

सता को ताकता रह गया। उधर वह भाभी हैं, जो परिवार बाहरी हैं। इधर यह सता है, जो मुझे मेरे परिवार से जोड़ना उसका आत्म-बल कुछ बढ़ा, "वात तो तुम्हारी काबिले तारीफ है... उठाने लायक सिद्ध न हुआ तो ? विजनेस तो तकदीर है।"

तेर का ही नहीं, सदबीर का भी। अल्कि तकदीर मे अधिक ही।" सता ने हिम्मत धँघाई, "इस तरह घुटने, चिंतित रहने तुम्हें आत्मनिर्भर बनने के बारे में ही सोचना चाहिए। आत्म-ही आत्मविश्वास जागता है और आत्मविश्वास से ही सफलता हो सकती है।"

को सगा, जैसे उसके भीतर का खोया आत्मविश्वास जाग रहा विश्राम ही नहीं, स्वाभिमान भी। फिर भी, "लेकिन पारटी जैसे इस्तेमाल कर सकती हो ?" वह बोल उठा, "कोशिश ही तो जी है ! सफलता तो ऊपर वाले के हाथ होती है।"

क, ऊपर वाले के हाथ होती है। पर 'ऊपर वाले' में आस्था र अपना आत्मविश्वास जगाए रखकर कोशिश करते जाना ही ता को कुजी नहीं ?"

सकती है। लेकिन ..."

एन क्या, दूसरों की कृपा या सहायता से हम जो पाते हैं, उसमे ने का तनाव न हो, तब भी क्या आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, र जैसी आनदानुभूति मिल सकती है ? भले ही अपने बलबूते तैयार

नभ मिले, पर उसके बदले हम जो पाते हैं, योग्य, कम हरगिज नहीं। आत्मनिर्भर न रूप से ही दुर्बल पड़ जाते

हो। इस तरह तो अभी तक मैंने सोचा ही न ।" नरेश अब पहले से अधिक गंभीर हो आया।

“भोचना पड़ेगा नहीं, नरेश, सोचो, इसी दिशा में सोचो। तुम्हें अपने पैरो छड़ा ही नहीं होना है, चितित पिता का है। ऐसा लक्ष्य सामने रखते ही तुम्हारी संकल्प-शक्ति, इच्छाशक्ति आत्मशक्ति बढ़ेगी। हम अपने भीतर यह उपलब्धि पा लें तो पिता उपलब्धि क्या चीज रह जाती है ?”

नरेश हैरान ही लता की तरफ देखता रह गया, एक-दूसरे पाया, “तुम नो कहती थी, तुम्हें किसी बात का अनुभव नहीं, यह कैसे सीखा ?”

“तुमसे मेरा परिवर्तन छूपा हुआ है क्या ? कुछ समय पूर्व मैं ही निराश, हताश रहा करती थी, इसलिए चितित भी कि कुछ भी मेरे लिए संभव नहीं होगा। फिर हुआ कि नहीं ?”

“ऐसा क्या हमेशा संभव है ?”

“हाँ है। संकल्प-शक्ति, इच्छाशक्ति जगत्कर सब संभव है। है, केवल अपने भीतर की सोई शक्तियों को जगाने की ही।

“जानते हो, मैंडम मेरी क्यूरी कैसे महान वैज्ञानिक बनीं। अठारह वर्ष की आयु में एक घनी परिवार में अल्प शिक्षित पढ़ी थी। बड़े दिन की छुट्टियों में उन परिवार का लड़का घर आया, आसनर हुआ, दोनों में प्रेम हुआ और मेरी क्यूरी तरफ अपमानित करने में निकल दी गई। उस समय वह कितनी व्यथित, हीनहीन और बेचारी थी। पर उसके भीतर कुछ बनने का संकल्प जागा और वह वैज्ञानिक बनी—दो बार नोबल पुरस्कार पाने वाली महान वैज्ञानिक।

“स्वामी विवेकानन्द, काशी में बंदरों से डरकर भागे। बंदरों ने कहा कि वह बूढ़ देख रहा था। उसने कहा, ‘मायो नहीं, उनका डर तो मेरा’ विवेकानन्द उनके सामने तनकर सड़े हो गए और बंदर भाग गए। इनमें विवेकानन्द के भीतर का आत्मबल जागा, उसने उन्हें चमकाने का नहीं बना दिया ?

“महान् शक्तिशाली हमसे अपनी पुत्रावस्था तक क्या थे ? शक्तिवत कैसे घर में पैदा हुए थे ? और सुनोये ?”

“बल-वत्, साठरनी थी, मयना है, सु—

आज इतना ही लेक्चर रहने दो। मुझे सोचने का मौका तो दो।”

“दिमा।” कहकर वह खिलखिला उठी, “फिर भी मैं जानना चाहती हूँ कि आया कुछ ब्याले गरीफ में? मैं लेक्चर नहीं दे रही। केवल यह बर्ता रही हूँ तुम्हें कि तकदीर के धरोसे न बँडो, तदबीर से उसे बनाओ भी। तदबीर में तो ब्रिगडी तकदीर भी बनती है, तुम्हारी तो अच्छी-लामी है।”

“अच्छा देवीजी, अब मुझे भी कुछ कहने, कुछ बोलने का मौका दोगी कि नहीं?”

“बोलो भक्त, क्या बोलना चाहते हो?” लता घरारत से आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उटाकर देवी का अभिनय करने लगी।

“इम उठे हाथ से तो कुछ माँग भी सकता हूँ मैं?”

“अवश्य। पर जरा शाँच-समझकर माँगना बच्चा।” और ‘बच्चा’ कहने के साथ ही उसने शरमाकर सिर नीचा कर लिया।

“तदबीर में तकदीर बनाने में तुम मेरा साथ दोगी, तभी न गारुडी होगी उसकी?” नरेश ने टटोला।

“सोचेंगे, इसपर भी सोचेंगे। पर जरा स्वतंत्र निर्णय लेने लायक तो हो लें। यह नहीं कि घर वालों ने जरा विरोध किया और हमने घुटने टेक दिए कि भई हम तो अभी नावालिन हैं, क्या कर सकते हैं?” उसकी निगाहों में अर्ध था।

नरेश ने उस अर्ध को पकड़ा, आत्मसात किया, फिर कहा, “तथास्तु।” अब अभय मुद्रा में हाथ इस ओर उठ गया था।

दोनों खिलखिलाएँ, फिर उठकर अपनी-अपनी राह चल पड़े।

घोरियत क्यों ?

सता, सीता और मित्र-मण्डली

परीक्षाएँ निबट चुकी हैं। परिणाम आने में अभी कई दिन बाँचे हैं। निरन्तर पढ़ाई की व्यस्तता में कुछ दिन सभी अनग-बसग पड़ गए थे। फिर पकान उतार रहे थे। पर दो-तीन दिन ही आलस्य-आराम में बिताकर वे सोग उब गए। सो एक-दूसरे से सम्पर्क किया और आज शाम मित्र-मण्डली फिर भा बूटी--सीता, दीपक, सता, सीपी, अलका, सोनू, शिवा, मुक्ता, राजीव, रमण, हर्ष और राकेश।

नरेश अपने कारोबार की व्यस्तता के कारण नहीं आ पाया। समीर शहर से बाहर चला गया है। शायद अलका इसलिए भी अधिक 'बोर' हो रही थी। उसने आते ही जैसे गोली दाग दी, "भई, हम तो बोर हो गए पर मे बँडे-बँडे और तुम लोग आज भी टाल रहे थे ?"

"क्यों ? कुछ जमा तीन दिन ही तो हुए हैं परीक्षा खत्म हुए और तुम बोर भी हो उठी ?" सीता ने टहोका, "समीर यहाँ नहीं है, शायद इसलिए ?"

"नहीं सीता, बैसे तीन दिन क्या कम होते हैं, घर में बोर होने के लिए ?" अलका बसमसाई।

"क्या बात है अलका, ऐसी उसड़ी-उसड़ी क्यों हो ? पर क्या बोर जगह होती है ?" शिवा ने शिमल हास्य बिधेरा।

अलका चिड़-सी गई, "इसमें हँसने की क्या बात है ? पर क्या, कोई भी जगह बोर हो सकती है, जहाँ लगातार रहना पड़े। कोई भी काम बोर हो सकता है, जो एक ही डर पर रोज चलता हो।"

"यह तो अपनी-अपनी मन-स्थिति पर निर्भर करता है कि कोई जगह

"हाँ, भौतिकता की अधी शक्ति में पैसे काय के अभाव (विशेष-अतिशय सभी लोग) प्रायः उद्देश्यहीन, है, इसलिए आभा-आस्थाहीन है। इसीलिए निरन्तर किमी मनसानी की आशा में रहते हैं। और इसके अभाव में वे आशा नहीं करते। दूर क्यों जाएँ ? हमारे जैसे कुछ प्रयुक्त रहे जाने वाले की शक्ति की सुरक्षा के बिना और नहीं होने लगते ? बौद्धिक शक्ति एक तरह से उत्पन्न की आशा ही है। इनके अभाव और कोई उद्देश्य प्रायः हमारे पास नहीं होता।" दोपहर ने मनाघान किया।

"क्यों नहीं होता ?" रमण बोले उठा।

"बहुत ही नहीं होता, ऐसा देने नहीं कहा। देने कहा है, प्राप्त होता। होता भी है तो कितनी के पास ?"

"बहुत क्या चुनौती है, तुम्हारे सिवा संभव सबके लिए ?" हर्ष का स्वर उभर आया।

"नहीं बाए, भेदा आसन्न यह नहीं था। पर चुनौती रूप में लें, ठाँव क्या हुआ है ? उससे कोई बकसद हो हाथ नदिया न ! नहीं तबना ठाँव हम उसके लिए सोचेंगे उसे उतारने के लिए रिश्ता पकड़ेंगे। वह न कर्म है ?"

"पानी धरके दे।"

"कर्म को धरकर ले तो यह धरकर पतने।" दोपहर ने उलझते हुए पर जैसे पानी का छोटा दे दिया।

उत्थन बैठ बना पर प्रश्न ने के प्रश्न बिकल रहे और बहाना पकड़ गई थी। सता, लीना को यह सब देख-सुनकर अचानक खड़ा हुआ। पर उन्हें सदा, लड़कियाँ बाउबोउ से लीजे हुए पड़े हैं। उन्होंने एक-दूसरे को इगारा किया और बहाने के मूढ़ पड़ी। एक को दे करने हुए मैंने ली, "लेकिन नून प्रश्न के ही जान बंद हुए ही पर है : की मर मर या कि एक बड़ी बलिदानों के भी कोई और ही... ?" हर्ष कर्म बंद होना है, कोई बौद्धिक ? दोपहर ने,

"दोनों ही जानने इन के इच्छा

"और इसके जैसे नेट अन्त बन्त।"

“हाँ, भौतिकता की अंधी दौड़ में फँसे पाज के अधिसरभ नई (शिक्षित-अशिक्षित सभी लोग) प्रायः उद्देश्यहीन, दिशाहीन जीवन जी रहे हैं, इसलिए आशा-आस्थाविहीन हैं। इसीलिए निरन्तर किसी उत्तरक किसी सनसनी की तलाश में रहते हैं। और इसके अभाव में वे बोर होते लगते हैं। बोर क्यों जाएँ ? हमारे जैसे कुछ प्रयुक्त कहे जाने वाले भी एक बौद्धिकता की खुराक के बिना बोर नहीं होने लगते ? बौद्धिक बहुरूप एक तरह से उत्तेजना की तलाश ही है। इसके अलावा और कोई उंच उद्देश्य प्रायः हमारे पास नहीं होता।” दीपक ने समाधान किया।

“नयो नहीं होता ?” रमण बोल उठा।

“बिल्कुल नहीं होता, ऐसा मैंने नहीं कहा। मैंने कहा है, प्रायः नहीं होता। होता भी है तो कितनों के पास ?”

“यह क्या चुनौती है, तुम्हारे सिवा शेष सबके लिए ?” हर्ष का स्वर उग्र हो आया।

“नहीं मार, मेरा आग्रह यह नहीं था। पर चुनौती रूप में लें, तो भी क्या बुरा है ? उससे कोई मकसद ही हासिल होगा न ! नहीं सनेया, तो हम उसके लिए सोचेंगे, उसे तलाशेंगे, उसके लिए जिता पकड़ेंगे। यह क्या कम है ?”

“पानी भटकेंगे।”

“स्पर्श की भटकन से तो यह भटकन भली।” दीपक ने उठने हुए पर जैसे पानी का छोटा दे दिया।

उपान बँठ गया पर प्रश्न में से प्रश्न निकल रहे थे और बहल बन पकड़ गई थी। सजा, भीना को यह सब देख-गुनकर अस्वाभाव रहा था। पर उ-हे सजा, लड़कियाँ बाजभोग में पीजे लूट रही हैं। उन्होंने एक-दूसरी को इलाका सिवा और बहल में कूट पड़ी। पहल भीना न भरने हासिल न ली, - लड़कन मूल प्रश्न में तो भाव भाव टूट हो गए हैं। मैंने प्रश्न उठाया था कि एक ऐसी परिस्थिति में भी कोई बार हासिल है, कोई नहीं ? कोई क्या बार हासिल है, कोई अधिक ? एसा क्यों ?”

“देवेता अन्तर्द्वेष से इतना अन्तर्द्वेषित ही हो पाई।” भत्ता चहरी, और एक दोड़े बल अन्तर्द्वेषित था, अन्तर्द्वेषित था दुखा मचाने।”

की प्रवृत्तियाँ न दिया ।

‘पानी हूँ तबूट खोलिएत । किसी तबूट छुटकारा नहीं । तबूट बना समय बचने का कोई उपाय है ?’ अमका ने फिर पेंच डाल दिया ।

“है क्या नहीं ? योगिता करके काम अपनी पगल का चुनो । नहीं तो उसमें सब लेकर उसके लिए अपने में योगिता-शमता जुटाकर, उन अपनी पगल का बना ला । खोलियत में निताह हो नहीं होगा, उन्नति का डार भी लुगेगा ।” लीना ने जैसे बात का निरा कर दिया ।

पर अमका की पगलभी नहीं हुई. माना, मदद मागने रखकर काम म भिड़े रहने, जिन्दगी की प्रतियोगी दौड़ में प्राय निरुत्सने की धुन में व्यस्त रहने में योगियत काम होगी । पर जैसे ही फुरसत के क्षण आएँ, एक जैसे काम की काम के एक ही इन्तों की नीरगता बना अधिक नहीं मांगेगी ?”

‘उन्हीं क्षणों के लिए तो ‘हाबियाँ’ का महत्त्व है । काम के बीच-बीच में काम करने का इत कुछ बदल में, फुरसत के समय कुछ बदला हुआ काम कर में, कुछ समय भ्रमण में, प्रकृति, दोस्तों की मर्यादा में बिता में, अपनी मनपसन्द की कुछ हाबियाँ अपना में तो दिनकरवर्षा की एकरसता को अवश्य भंग किया जा सकता है ।’ यह सोच था ।

“अपनी जीवन-संघर्षों में, रहन-सहन में, ध्यान-पान में, तीर-नरीकों में विविधता माते रहे, नवीनता भरते रहें, तो व्यक्तिगत में ताजगी और प्रकृति अपने आप ही आएगी । तब न अकेलेपन से ऊब होगी, न एकरसता की निरासत ।” रिमला ने जोड़ा ।

“अकेलेपन की ऊब से बचने के लिए अपनी कूट्याओं से, ईर्ष्या-द्वेष से मुक्ति भी जरूरी है । पृष्ठा, ईर्ष्या ध्यार की दुश्मन है और हर समय अपनी परिस्थितियों का रोना रोकर अपने आप पर तरस घाने के लिए दूसरों को अपनी ओर खींचने का मतलब होता है, उन्हें अपने से और दूर करना । याद रखना चाहिए कि लोग बहुत व्यस्त हैं और उन्हें दूसरों को परवाह करने की हमेशा फुरसत नहीं रहती । उन्हें परवाह करने के लिए बार-बार टहोके लगाने का अर्थ होगा, अपनी ओर से और बेपरवाह करना और अपनी कूट्याओं को, अकेलेपन की ऊब को और बढ़ावा देना ।” इस बार

बहुत देर हो चुकी है।”

“क्यों, क्या इसमें भी जोर हो गई ?” दीपक ने ठहाका लगाया।

“नहीं दीपू, कहा न, मेरे काफी जाले साफ कर दिए हैं तुम लोगों ने। पर अब चलना नहीं चाहिए क्या ?”

“बेमक चलना चाहिए। पर पहले काँकी हाउस की ओर, फिर घर। इतनी सारी बहस के बाद अब दिमाग को कुछ दूसरी छुराक भी तो चाहिए।”

सभी ने सहमति में सिर हिलाया, काफी-फरमाइश पर दीपक को दाद दी फिर यह युग्मी-यिती मित्र-मण्डली अपने गतव्य की ओर बढ़ पत्नी।

“न जीव भूँदकर पहले उनकी दिशाईं केगी भी गह्वर चारों, फिर प्रयत्न बाधक उपाय उपायन दिरे।”

वेना क्या हर बार सम्भव है ?” इस बात रूप में सवा उत्तर।

नहीं। पर असाध्य का सम्भव बनाना विरगीन विधियों से से भी गह्वर निराशा ही ता बह्वुरण्य है। विगका रूप सोचा में मरुत दिना है। मरुत ही न ही, वागित करन न हुमें सोच गोक सुकर है ? वागित भी द्वाइ देने ता फिर हुमें यममान सुमाज में तिभाव-भर करने का र्ण हक है ? और फिर हुमें इदमा र्णें दाएर ?”

‘तीन ही तां मुख चारों ? - १ पहले स्वयं का पहचानना २. फिर अपनी गतिविधियों और गृहियों का विज्ञान कर उनके अनुकूल गह्वर पुनर्वाय उग सध्व की प्रार बनना और ३. फिर जिस काम को हाथ में लें, उसे पूरी मरुत में सीधना पूरी ईमानदारी से मरुत में करना कि अपनी समझाओं का विज्ञान हा और काम में मरुतता व तरकीब मिले। कैरियर कोई भी हो वे सोच चारों हमारे माथ ही ता न निराशा के लिए कोई कारण है, न असमरुतता के लिए।” हर बात को आगावादी दृष्टिकोण में देखने, आदर्श-वादी रूप से रखने व मरुतीहर तरीके में प्रस्तुत करने वाली यह सीमा थी।

“बातें इतनी सरल नहीं होतीं देखीनी, मरुत है, आपने अभी मरुत किया-देखा नहीं।” सोनू ने धीटा कहा।

“समर्थ आज सभी करते हैं। हाँ, कोई कम, कोई ज्यादा। जानती हूँ, बातें सब इतनी सरल नहीं होतीं, पर सकारात्मक दृष्टिकोण से देखने पर वे सरल लगती हैं, नकारात्मक दृष्टिकोण से देखने पर वे ही बर्ण लगने लगती हैं, क्या इस तथ्य से भी तुम सहमत नहीं सोनू ?” सीता ने उसकी ओर प्रश्न उछाला।

स्थिति सिमता ने मरुतली सी, “अच्छी-मनी चर्चा को बेकार की बर्ण में उलझाओ मत। मुख्य मुद्दा है, कैरियर और सही कैरियर का। कैरियर तो कोई भी हो सकता है, सही कैरियर का चुनाव न तो सरल होता है, न पूरी तरह क्या, पचास-साठ प्रतिशत भी आज अपने हाथ में। तब अपनी राह आप निकालने की बात तो ठीक, पर कैसे ? चर्चा इस मुख्य मुद्दे पर

... ॥

... ॥

... ॥

... ॥

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

। ३ ३२३३ ३३३

— ३३ ३३ ३३३३ ३३ ३३३ ३३३३ '३३३३ ३३३३ ३३ ३३३ ३३३

। ३३ ३३ '३३ ३३ ३३३ ३३३ '। ३३ ३३३ '३ ३३३३ ३३३३
३३३३ '३ ३३३३ ३३३ '३ ३३३३ ३३ ३३३३ -- । ३३३३ ३३ ३३ ३३३३
३३३ ३३ ३३३३ ३३३३ '३३ ३३३३ ३३ ३३३ ३३३ ३३ ३३३ ३३३३-३३३३
३३३३ ३३३ ३३३३ ३३ '३३ ३३३३ ३३३३३ ३३३ ३३ ३३३ '३३३ ; ३३३ ३३३३
३३ ३३३३३ ३३३३ ३३ ३३३ ३३ ३३३ ३३३ । ३३३३ ३३३३ ३३३३ ३३३ ३३३ ३३३

ग्राफिस गर्ल

सता, लीना, मम्मी

"ओह, लीना ! आओ, आओ, तुम तो शाम को छुट्टी के समय आने वाली थीं न ? लच समय में कैसे जा गई ?" लीना को अचानक आँखें देख लता चहकी भी, उसने आश्चर्य भी प्रगट किया ।

"बस यूँ ही, इस तरफ आई थी, सोचा, घर जाकर फिर खाना मुम्बिन होगा, अभी ही चली चलूँ । कोई अमुविधा तो नहीं इन समय ?" लीना ने बात बनाई । वास्तव में वह दिए गए समय पर नहीं, जवानक आकर ही देखना चाहती थी ।

"नहीं नहीं, अमुविधा कैसे ! जाओ, हमारे साथ खाना खाओ । घर से चले तो देर हो गई होगी न ?"

"हाँ, कुछ देर पहले ही घर से निकली थी । खाना खाकर तो नहीं आई, पर तुम फिक मत करो, मैं यहाँ से सीधे घर ही जाने वाली हूँ, जाकर खा लूँगी । यहाँ तुम कितना लेकर आई होगी, अपना ही तो ?"

"हम सबके पास अपना-अपना ही है, पर सबके दिन्वों में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर भी एक व्यक्ति का खाना तो निकाला ही जा सकता है । आप अवश्य हमारा साथ दीजिए, हमें खुशी होगी ।" यह सता की बगल में बैठी उसकी सह-कर्मी कुमुम थी ।

इस ओर के इस ग्रुप में बैठी कुल पाँच लड़कियाँ थी । सबने आपस ही किया तो थोड़ी हिचक के बाद लीना खाने में शामिल हो गई । उसे यह 'आफर' अच्छी लगी ।

पर लीना का ध्यान खाने की विविध मम्बिज्यों, चीजों या अपने इस ग्रुप की लड़कियों की ओर ही न था । खाने में साथ देती हुई भी वह तजर

दो मया पाठि वह भी उनी का प्रथम कर्मकर्ता ही वह (न) मः
 या लय क समय का प्रथम कर्मकर्ता वनक-वनक ही मया ही वंश
 के लय से ही वे लो को ।

भीमा न भी रश्मिवा, यही पुनः-वर्षाया जगद-जगद गी, (ए
 मयुह में बड़े में और मय के लय उपर्ये बीच का मय लय
 साधारणक हास्यो पर मया ही रही थी, आ बीच बीच में मय का मय
 से मयो थी । इस लोको के बीच आये मयुहो पुनः-वर्षाया को देकर
 को ही विरोध विमलमयो म यो, इगलित् हके मयाक और 'रिवाह' से
 ये ; मय लोप मयुह पाव से मियकर खाना का रहे से, आन व रिवाह
 कर ही । मयुह ही ये, दहाक भी । मयुह मया-वर्षाया भी मया मयो
 मयो मनोरंजक काते भी । पर मयावाचक साकभिक, कावतु-
 और कुष्ठायो को वही घोत्रे भी अयुह मयो मिय रही थी ।

कुछ समय बाद उसी महान भाव से मय उठ मके मयु और उन्ने
 अपनी गीट पर जाने के लिए उठत ही मय । मीना भी मयो मान हुना
 कर उनके साथ-साथ ही उठकर बाहर आ गई । किन्तु का ध्यान उनके
 जोर नहीं गया । न उनके बीच अनावश्यक विज्ञाया मयो कि यह लोको
 कौन है या जहाँ से आई है ? आदिम के वातावरण की लता की वान वही
 कुछ उसकी समझ में आ गई थी । 'पर क्या लता इतनी-सी बाध के लोको
 भी अभी तक अभिज्ञ है ?' लीना ने सोचा और पर की राह लो ।

नाम की लता के पर आने से पूर्व अपनी 'आदिम-देयो' की रिपोर्ट
 अपने वन से वह मयो को दे चुकी थी और लता की विज्ञापन को कर
 भी उन्हे बता चुकी थी । पर मयो भी अबोध है । न जाने क्यों वे लीना
 से अधिक लता पर भरोसा करने लगी थी । इसलिए उसके मूह से ही मुनना
 चाहती थी, अपनी और से कुछ जाहिर नहीं करना चाहती थी कि उन्हें
 लीना के माध्यम से कुछ मान्य है ।

लता इतर से निकलकर सीधे लीना के पर पहुँच गई । उसे कुछ
 झसझस देसकर मयो ने पहले चाय भेगवा ली कि चाय की चुस्कियो के
 साथ उसे सहज होने का मौका मिल जाए । मय चाय चलती रही और
 लता गुपगुप-ही बँधी चाय ही सुड़कती रही । बीच-बीच में मयो ने कुछ

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

मानव में प्रकृतितत्त्व तथा अथवा प्रकृत्य हर देती है। यह एक गूँ-विनाशिकी बहुत सम्पूर्ण कारण है, इसमें तबोला व सुविधा के लिए प्रकृति के साथ व रक्षा के कारण अथवा अनिर्वाहताओं को प्रकृति करना है।”

“अथवा मन्त्रा, हर साह दाना रक्षा निरकर जान से कमजोर गी जाती ? क्या इन कमजोरि के लिए अनिर्वाह गुराह लेने का अन्य उपाय जान की प्रकृत्य जानो है ? वे ता एता नहीं मन्त्रा, तबोला मन्त्रा का मने एता बहुत गुना है।”

‘यह भी विद्यार्थियों की प्रकृत्य विगत का एक कारण है। यह धारणा एकदम भ्रामक है कि हमने कमजोरी मानो है। यह तो एक तरह का मया मृत होना है, जिनका हर महीने निष्कासन जरूरी है। वर्ष के समय जब शिशु के पोषण के लिए इसको प्रकृत्य होती है, प्रकृति स्व ही इसका पोषण करके इसे भीतर रोक लेती है। हाँ, प्रकृत्य में उगना साथ ही तो अवश्य कमजोरी आ सकती है। तब तो किसी भी अन्य असा-मान्यता की तरह इसका इलाज करवाना होगा। तब भी अनिर्वाह पोष्टिकता वाली गुराह लेने की बात भ्रामक है, क्योंकि भासिक की सहज स्वस्थ निष्पत्ति के लिए तो उन दिनों हल्का पोष्टिक भोजन लेने और सफाई-स्वच्छता का विशेष ध्यान रखने की ही आवश्यकता होती है। इस से बचना व भारी व्यायाम या थम के कार्य न करना तो ठीक, पर अधिक आराम करने या स्नान न करने से लाभ के बजाए हानि ही हो सकती है।”

“अन्य विद्यार्थियों कि स्वास्थ्य ठीक रहे व भासिक भी ?”

“मौसम अनुसार हल्के गरम या ठंडे पानी से स्नान जरूर नों व स्वच्छता के लिए साफ विसर्जित कपड़ा या ‘सेनेटरी पैड’ इस्तेमाल करें कि बीमारियों से बचाव रहे। पानी जाने व खुजली होने के रोग प्राय इसी कारण लगते हैं कि सफाई (इंफेक्शन) से बचने के लिए सफाई-स्वच्छता का ठीक ध्यान नहीं रखा गया। शुरू में समझन ही तो घर की किसी समझदार महिला से जानकारी लेनी चाहिए या नि.सकोष लेडी डाक्टर से सलाह लेनी चाहिए—कोई समस्या होने पर तो अवश्य ही कि बाह से अधिक कट व भोगना पड़े। हाँ, साथ बहुत कम ही तो जरा अधिक

इस सच को देखकर, मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ। मैं इसे
इस सच को लेकर ही लाना चाहूँ कि मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ।

... मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ। मैं इसे
इस सच को लेकर ही लाना चाहूँ कि मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ।

... मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ। मैं इसे
इस सच को लेकर ही लाना चाहूँ कि मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ।

... मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ। मैं इसे

... मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ। मैं इसे

... मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ। मैं इसे
इस सच को लेकर ही लाना चाहूँ कि मैंने सोचा कि मैं इसे भी लाना चाहूँ।

1956 12 17 1957 1 1958 2 1959 3 1960 4 1961 5 1962 6 1963 7 1964 8 1965 9 1966 10 1967 11 1968 12 1969 13 1970 14 1971 15 1972 16 1973 17 1974 18 1975 19 1976 20 1977 21 1978 22 1979 23 1980 24 1981 25 1982 26 1983 27 1984 28 1985 29 1986 30 1987 31 1988 32 1989 33 1990 34 1991 35 1992 36 1993 37 1994 38 1995 39 1996 40 1997 41 1998 42 1999 43 2000 44 2001 45 2002 46 2003 47 2004 48 2005 49 2006 50 2007 51 2008 52 2009 53 2010 54 2011 55 2012 56 2013 57 2014 58 2015 59 2016 60 2017 61 2018 62 2019 63 2020 64 2021 65 2022 66 2023 67 2024 68 2025 69 2026 70 2027 71 2028 72 2029 73 2030 74 2031 75 2032 76 2033 77 2034 78 2035 79 2036 80 2037 81 2038 82 2039 83 2040 84 2041 85 2042 86 2043 87 2044 88 2045 89 2046 90 2047 91 2048 92 2049 93 2050 94 2051 95 2052 96 2053 97 2054 98 2055 99 2056 100

1956 12 17 1957 1 1958 2 1959 3 1960 4 1961 5 1962 6 1963 7 1964 8 1965 9 1966 10 1967 11 1968 12 1969 13 1970 14 1971 15 1972 16 1973 17 1974 18 1975 19 1976 20 1977 21 1978 22 1979 23 1980 24 1981 25 1982 26 1983 27 1984 28 1985 29 1986 30 1987 31 1988 32 1989 33 1990 34 1991 35 1992 36 1993 37 1994 38 1995 39 1996 40 1997 41 1998 42 1999 43 2000 44 2001 45 2002 46 2003 47 2004 48 2005 49 2006 50 2007 51 2008 52 2009 53 2010 54 2011 55 2012 56 2013 57 2014 58 2015 59 2016 60 2017 61 2018 62 2019 63 2020 64 2021 65 2022 66 2023 67 2024 68 2025 69 2026 70 2027 71 2028 72 2029 73 2030 74 2031 75 2032 76 2033 77 2034 78 2035 79 2036 80 2037 81 2038 82 2039 83 2040 84 2041 85 2042 86 2043 87 2044 88 2045 89 2046 90 2047 91 2048 92 2049 93 2050 94 2051 95 2052 96 2053 97 2054 98 2055 99 2056 100

अपनी रक्षा आप

लता और मम्मी

लीना ट्रेनिंग के लिए बाहर चली गई थी। यो वह पर मे अधिक नहीं रहती थी, पर एक सप्ताह से ज्यादा बाहर से बाहर रहने का उनका यह पहला ही अवसर था। मम्मी का फुरसत का समय अबसर उसी के साथ कटता था। उनके बीच माँ और किशोरी बेटो जैसा, आम घरों-या, दूरी का रिस्ता था ही नहीं। लीना तो अन्तरंग सहेली की तरह माँ से हर बात कर लेती थी। मम्मी ने भी उसे इतना निकट रखा कि मनोरंज या दुःख के लिए कोई गुजाइम ही नहीं छोड़ी। सुखद व्यक्तित्व और मनुजित्त मन-मस्तिष्क वाली मम्मी ने बचपन से ही लीना को इस तरह डाला, संवारा कि लीना का ही भविष्य निश्चित निश्चिन्त नहीं हो गया, उनके मम्मी के आने वाले उसके मित्रो, सहेलियो को भी इसका भरपूर लाभ मिला।

लता आज जो भी है, इसी वातावरण और प्रशिक्षण की देन है। पर इसके लिए लता को मम्मी के अहमान तले कभी दबना नहीं पडा, यह मम्मी के सहयोग और प्रशिक्षण-शैली की अतिरिक्त देन है। इसलिए लता को मम्मी पर गर्व है, उनके निकट रहकर अपने पर गर्व है और मम्मी को लता को लेकर यह सन्तोष है कि उन्हें एक उपेक्षित किशोरी का भविष्य संवारने का अवसर मिला और अपने इस कार्य में वह सफल भी रही। इस निकटता का ही सु-फल है कि लता जब चाहे अपनी किसी मानसिक उत्थान या समस्या को लेकर मम्मी के पास आ जाए और मम्मी उसकी सम्भव सहायता कर अपने कृत्य की सार्थकता अनुभव करें।

इस तरह देखा जाए तो संरक्षक बर्णों और सरक्षित छोटी के बीच का यह प्रारान-प्रदान शोर्ष ही पार्श्वों के लिए समान लाभकारी सिद्ध होता

१५५
 १५६
 १५७
 १५८
 १५९
 १६०
 १६१
 १६२
 १६३
 १६४
 १६५
 १६६
 १६७
 १६८
 १६९
 १७०
 १७१
 १७२
 १७३
 १७४
 १७५
 १७६
 १७७
 १७८
 १७९
 १८०
 १८१
 १८२
 १८३
 १८४
 १८५
 १८६
 १८७
 १८८
 १८९
 १९०
 १९१
 १९२
 १९३
 १९४
 १९५
 १९६
 १९७
 १९८
 १९९
 २००

१९०

१९१
 १९२
 १९३
 १९४
 १९५
 १९६
 १९७
 १९८
 १९९
 २००
 २०१
 २०२
 २०३
 २०४
 २०५
 २०६
 २०७
 २०८
 २०९
 २१०
 २११
 २१२
 २१३
 २१४
 २१५
 २१६
 २१७
 २१८
 २१९
 २२०
 २२१
 २२२
 २२३
 २२४
 २२५
 २२६
 २२७
 २२८
 २२९
 २३०
 २३१
 २३२
 २३३
 २३४
 २३५
 २३६
 २३७
 २३८
 २३९
 २४०
 २४१
 २४२
 २४३
 २४४
 २४५
 २४६
 २४७
 २४८
 २४९
 २५०
 २५१
 २५२
 २५३
 २५४
 २५५
 २५६
 २५७
 २५८
 २५९
 २६०
 २६१
 २६२
 २६३
 २६४
 २६५
 २६६
 २६७
 २६८
 २६९
 २७०
 २७१
 २७२
 २७३
 २७४
 २७५
 २७६
 २७७
 २७८
 २७९
 २८०
 २८१
 २८२
 २८३
 २८४
 २८५
 २८६
 २८७
 २८८
 २८९
 २९०
 २९१
 २९२
 २९३
 २९४
 २९५
 २९६
 २९७
 २९८
 २९९
 ३००

घर वालों के भय से रुदम पीछे हटा लिए गए। जब आज के जमाने में हर लड़का मजबू बनकर प्रेमिका के पीछे रोने नहीं बैठ जाएगा, न ही दार्शनिक अदाज में अपने प्रेम का उदात्तीकरण करके चुप बैठकर प्रेमिका के लिए मन ही मन में दुआएँ माँगता हुआ अपने प्रेम पर कुरवान हो जाएगा। कुछ तो बदले पर उठारू होंगे ही, विशेष रूप से अपराधी प्रवृत्ति के लड़के, जिनके लिए प्रेम का जाल फैला, लड़कियों से घिलवाड करना फँसना या मर्दानगी का प्रदर्शन या महज शमल ही होता है। तो यह मान कर चलना चाहिए कि अपहरण, बलात्कार और ब्लैकमेलिंग के पीछे अवसर ऐसी प्रेम और बेवफाई की कथित कहानियाँ होती हैं या अपमान पर बदले की कार्यवाही अथवा कोई व्यक्तिगत या पारिवारिक रजिज। इसलिए आणा-पीछा देखकर मर्मादा में चलने वाली लड़कियों के लिए अकारण खतरे के अवसर कम ही उपस्थित होते हैं। अतः अकारण भयभीत रहने में कोई तुक नहीं।”

“लेकिन ?”

“हाँ, मैं तुम्हारे इसी लेकिन पर आ रही हूँ। तुम्हारा आसप आस के आम अमुरक्षित हो आए हालात से है न? पहले किसी साम्प्रदायिक दंगे, मुठ जैसी असामान्य स्थितियों में ही अमुरक्षा महसूस की जाती थी, जिस पर अकेले व्यक्ति का कोई न बस होता है, न उसपर इसका कोई दायित्व ही। अब ये असामान्य स्थितियाँ अन्तर शहरों, कस्बों, गाँवों का किसी भी समय टूट पड़ने वाले छतरो की एकत्रियों में घेरने लगी है, तो उन खतरो से बचाव के उपाय भी सोचना ही होगा।

“शास्त्राते बड़ रही है। अमुरक्षा बड़ रही है। इसके साथ ही बड़ रही है, सरक्षण की माँग। पर केवल सरकार या पुलिस के सरक्षण से कुछ न होगा। न इस तरह के सरक्षण में सबको बैठ रखना सम्भव ही है। शिक्षा, रोजगार क्षेत्रों में लड़कियों के आने बड़ते कदमों को अब सरक्षण के नाम पर पीछे मजबूत में नहीं लौटाया जा सकता। जरूरत है, इन कदमों में सरक्षण को दृढ़ता और स्वयं रक्षण की शक्ति भरने की। नारी का सरक्षण सरकार व समाज का दायित्व है, उसको अपनी प्रतिष्ठा, अपनी अस्मिता, अपनी नैतिक शक्ति का सरक्षण है। समाज में यह पेंता

... ..
... ..
... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

धे कि न कभी अकेले घर से जाने का अवसर मिला, न इस तरह अपनी सुरक्षा आप करने का स्थान आया। अब तो रोज ही सुबह-शाम घर से दफतर आना-जाना रहता है। सड़ियों में बस से नोटते अवसर भँधेरा भी घिर आता है और कभी-कभी तो अकेले मुनसान गली, सड़क से भी गुजरना होता है। ऐसे में ये रोज-रोज की बारदातो की खबरें ! तो इस तरह के स्थान आना स्वाभाविक ही है। क्या अब भी मैं जूटो प्रशिक्षण ले सकती हूँ ? कहाँ होता है यह ? किम तरह ? कृपया बतलाएँगी मम्मी ?”

लता की विज्ञाना देल मम्मी ने उसे बताया, “आत्म-रक्षा की जापानी पद्धति है यह, जिसे आज हर छात्रा, हर कामकाजी युवती के लिए सीखना उपयोगी होगा। लीना ने सीखा था, तब ‘अखिल भारतीय महिला परिषद्’ की स्थानीय शाखा ने एक शिविर का आयोजन किया था। अब तो बहुत-सी सस्थाओं में और थोडा-जुहों में इस प्रशिक्षण की व्यवस्था है। पता लगाओ, शाम की कक्षाएँ कहाँ लगती हैं ? नहीं, तो कभी कुछ दिन की छुट्टी लेकर भी सीख सकती हो। पन्द्रह दिन का प्रशिक्षण ही काफी होगा। गूलक नाममात्र का ही है, महिला सस्थाओं में। और सामग्री की कुछ जरूरत है ही नहीं। बस चुन्नी या साड़ी कमर में छोसी और भिड़ने के लिए तैयार।”

लता की हँसी आई, “इसका मतलब है, हमें लडाकू बनना है ?”

“जरूरी नहीं। ‘जूटो’ का अर्थ है, पारौरिक दृष्टि से कमजोर पक्ष का अपने से ताकतवर पक्ष से सामना होने पर आत्मरक्षा की तकनीक। एक कमजोर लडके को भी अपने से ताकतवर दुश्मन लडके या गुहे में अपने बचाव के लिए यह तकनीक सीखनी होती है कि कैसे वह समय पर अपने से बलवान को पटखनी देकर उसमें अपनी रक्षा कर सके। अतः यह प्रशिक्षण केवल लडकियों के लिए ही नहीं है। यह असल बात है कि आज लडकियों को भी इसे सीखने की जरूरत आ पड़ी है। पारौरिक दृष्टि ने लडकियाँ लडकों से प्रायः कमजोर और कोमल होती ही हैं और पाला अधिवतर लडको से ही पड़ता है। इसलिए यह उनके लिए अधिक उपयोगी है कि कम से कम तब तक के अपनी रक्षा अवश्य कर सकें, जब तक कि उनकी आवाज पर बाहर से शरारत न जुटे। जलो से लडकी-लडकी-लडकी

अमृतसर की एक महिला ने दरवाजे की पटी बजने पर जब पहला भौंकता देखा कि बाहर कौन है, तो सामने सड़े एक उड़वादी के हाथ में विस्तृत दिख जाने पर उसने तुरन्त मुट्ठी भर मिर्चें उसकी ओर उछाल दीं। यह घिस्लामा और पीछे छुपा उसका साथी आगे आकर उन भगा ले गया। पिछी सास मिर्चें एक डिब्बी में डालकर उस महिला के दरवाजे के पास ही रख छोड़ी थी। यह तरकीब समय पर उसके काम आई।”

“पञ्जाब के हालात देखने हुए उसने यह पूर्व प्रबन्ध करके रखा होया। पर मानना होगा कि सबसे बड़ी तरकीब थी उसकी, उस समय धीरज न खोना और प्रत्युत्पन्न मति से काम ले पूर्व सोची तरकीब को समय पर काम में लाना। गांधीजी तो लड़कियों को कहा करते थे, और कुछ पास न हो तो सामने वाले गुंडे के मुँह पर थूक तो सकती हो। दाँतों से उसे काट कर तो अपने आपको छुड़ा सकती हो। जब तक वह भँभलेगा, बाहर से सहायता जुट जाएगी और वह भाग खड़ा होगा। पर आज के बदतरनाक हथियारबन्द अपराधियों की गिरफ्त में सूटने के लिए 'जूडो' से भी अधिक जरूरत होगी, समय पर धीरज न खो, लूझूझ से, युक्ति से काम लेने की। इसलिए जूडो-प्रशिक्षण तो लो ही, मन से हमेशा हर तरह के खतरे का सामना करने के लिए तैयार भी रहो। यह मानसिक तैयारी ही मुख्य है। 'जूडो' भी इसी में सहायक है।” और मम्मो ने इस चर्चा को नभेटते हुए कहा, “बस अब इस चर्चा को आज यही रहने दें। मानसिक तैयारी का यह मतलब भी नहीं कि यही सब गोपते रहे। मानसिक परिपक्वता अपने आपमें हर समय के लिए एक मानसिक तैयारी है, जो खतरा के ली।” और उन्होंने प्यार के साथ लता को बिदा किया।
